परमार्थका सरगम

पूज्य श्रीराधाबाबाकी प्रिय परमार्थ-साधनकी
सुन्दर कथाएँ, कहानियाँ और पद

विषय-सूची

परिशिष्ट १

परिशिष्ट २
पाँच पगडंडियाँ

परिशिष्ट ३

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

संसारमें मानव-जन्मको अत्यन्त दुर्लभ माना गया है, ऊँच-नीच कर्मोंके अनुसार चौरासी लाख योनियोंमें भटकते-भटकते जब यह जीव श्रान्ति और क्लान्तिका अनुभव करता है, तब इसके अकारण हितू करुणा-वरुणालय प्रभु उसे मनुष्य-योनि देते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

—इसीलिये कि जीवका उद्धार इसी योनिमें सम्भव है। ऊपरकी देवादि-योनियाँ सुख-प्रचुर तथा नीचेकी तिर्यगादि योनियाँ दुःख-बहुल एवं तमःप्रधान होनेके कारण इनमें जीव अपने जीवनके उद्देश्य—भगवत्प्राप्तिको भूला रहता है। भगवान्ने विवेक-बुद्धि केवल मनुष्यको ही दी है, अतः मनुष्य ही हिताहितका विचार करके अपना हित-साधन अर्थात् भगवत्प्राप्ति अथवा मोक्षके लिये प्रयत्न कर सकता है। उपर्युक्त कारणोंसे इतर योनियोंमें यह सम्भव नहीं होता। इसीलिये मनुष्ययोनिको संतोंने—

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।

—कहा है। इसे पाकर भी जो अपने ध्येयको नहीं प्राप्त कर लेता, उससे बढ़कर मूर्ख—आत्मघाती कौन होगा।

जीवन एक संगीत है। स्वर एवं ताल-लयमें परस्पर संवादिता होनेपर ही 'संगीत' नामकी चरितार्थता होती है। इनकी विसंवादिताको ही 'बेसुरापन' या 'बेतालापन' कहते हैं। इसीलिये किसी संगीतप्रेमी कविने स्वर-ज्ञानसे शून्यको 'असुर' और ताल चूकनेवालेको 'बेताल' की संज्ञा दी है—सुर नहिं जानै 'असुर' है, बिना ताल 'बेताल'। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक—सभी पक्षोंकी समस्वरताका नाम ही 'जीवन' है।

इस विषयको ठीक तरहसे हृदयङ्गम करनेके लिये स्वरोंका भी यत्किंचित् विवेचन आवश्यक है। कहते हैं—देवाधिदेव महादेवने पहले प्रणवध्वनि की। इस प्रणवध्वनिसे स्वर सात भागोंमें विभक्त हुआ, इन्हीं सात भागोंको 'सप्त स्वर' कहते हैं। उनके नाम क्रमशः ये हैं—(१) षड्ज, (२) ऋषभ, (३) गान्धार, (४) मध्यम, (५) पञ्चम, (६) धैवत और (७) निषाद। इन्हींको सांकेतिक भाषामें सा, रि, ग, म, प, ध, नि कहते हैं। इनके आलापमें क्रमशः

चढ़ाव-उतार होता है। अर्थात् षड्जसे निषादतक स्वर क्रमशः ऊँचा होता जाता है और निषादसे षड्जतक नीचा। इन सात स्वरोंके समूहका नाम है 'सप्तक'। निषादसे आगे बढ़नेपर पुनः इन्हीं सप्त स्वरोंका उसी क्रमसे आलाप होता है। इन सात स्वरोंको 'तार-सप्तक' कहते हैं और षड्जसे नीचे उतरनेपर उसी क्रमसे इन स्वरोंका आलाप करनेपर इनका नाम हो जाता है—'मन्द्र-सप्तक'। बीचके सप्तकका नाम है—'मध्य सप्तक'। मध्य-सप्तकके आगे षड्जका नाम है—'तार-षड्ज'। इसको मिलाकर कुल आठ स्वर होते हैं।

षड्जका निरुक्तगत अर्थ है—'षड्भ्यो जायते इति।' इसका उच्चारण नासा, कण्ठ, उरःस्थल, तालु, जिह्वा और दाँत—इन छः भागोंसे होता है। इसीसे इसका नाम 'षड्ज' पड़ा। दूसरे स्वरका नाम है 'ऋषभ।' संस्कृतमें 'ऋषभ' बैलको कहते हैं। बैलकी ध्वनिसे मिलता-जुलता होनेके कारण इसका नाम 'ऋषभ' हुआ। तीसरे स्वरका नाम है 'गान्धार।' भरतके मतानुसार इसका आलाप करते समय वायु नाभिसे उठकर कण्ठ और मस्तकतक जाती है। इन समस्त स्थानोंसे नाना प्रकारकी गन्ध निकलती है, इसीलिये इस स्वरका नाम 'गान्धार' हो गया। चौथे स्वरका नाम है 'मध्यम' है। इसकी अपेक्षा तीन स्वर नीचे हैं और तीन ऊँचे हैं। इसकी सबके मध्यमें स्थिति होनेके कारण ही इसे 'मध्यम' कहते हैं। क्रमकी दृष्टिसे पाँचवाँ होनेके कारण ही पाँचवें स्वरका नाम हो गया 'पञ्चम'। छठे स्वरका नाम है—'धैवत'। 'धीमतामयम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'धीमत्' शब्दसे 'अण्' प्रत्यय लगनेपर 'धैमत' शब्द बनता है और 'म' को 'व' आदेश हो जानेपर इसका रूप 'धैवत' हो जाता है। यह स्वर बुद्धिमानों (गायनकुशलों) का है। सातवें और अन्तिम स्वरका नाम है—'निषाद।' 'निषीदन्ति षड्जादिस्वरा यत्र'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'निषाद' में पहले छहों स्वरोंका अन्तर्भाव होनेके कारण इसे 'निषाद' कहते हैं। प्रत्येक संगीतके विद्यार्थीको 'तार-सप्तक' के षड्जको मिलाकर क्रमशः आठ स्वरोंकी साधना करनी पड़ती है। उदाहरणके लिये नीचे पीलू रागकी स्वर-साधनाका संक्षिप्त विवरण शास्त्रीय मतानुसार दिया जा रहा है—

राग पीलू

मतः पीलूरागः सकलमृदुतीव्रस्वरयुतो मृदुर्गान्धारोंऽशः सहचरति तीव्रस्तु निरिह।
प्रसिद्धः सर्वत्र प्रचुरतरसंचाररुचिरः सदा गेयः सर्वार्भकतरुणवृद्धैः परिचितः॥

—रागकल्पद्रुम

इस रागकी उत्पत्ति काफी ठाटसे मानी जाती है। यद्यपि गुणी गायकोंने इसकी गणना क्षुद्र रागोंमें की है, तथापि यह मानना ही होगा कि यह राग आबाल-वृद्ध सभीको समानरूपसे रञ्जक है। यह राग मिश्र रागोंमें अति मधुर है तथा कुशल गायकोंके द्वारा रञ्जनके हेतु भैरवी, भीमपलासी, गौरी आदिका मिश्रण करके गाया जाता है। कलाकार अपने सप्तकके बारहों स्वरोंको बड़ी कुशलतासे इसके उपयोगमें लाते हैं। तीव्र स्वरोंका प्रयोग अधिकतर अवरोहणमें ही किया जाता है।

इस रागका वादी स्वर 'गान्धार' और संवादी स्वर 'निषाद' है। इसके गानेका समय यद्यपि दिनका तृतीय प्रहर माना गया है, तथापि रागकी मनोरञ्जकताके कारण यह राग सभी समय गाया जाते सुना गया है।

राग पीलू, ताल तिताला, मध्य लय, मात्रा १६

स्थायी

			ध प म ग
			की ऽ र अ
म — म म	प — म ग	म ध प —	प ध सां सां
हो ऽ सु न	हौं ऽ न बि	र हि नी ऽ	तु म स च
नि सां ध प	ग म नि ध	प म रे सा	
सां ऽ व र	दा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ स	
३	×	२	०

अन्तरा

			ग म ध नि
			जि यौं ऽ अ
सां नि सां सां	ध नि रे सां	ध प ग म	ध ध ध/ध
ब हुँ पु नि	दे ऽ त सँ	दे ऽ सौ ऽ	तु म त जि
गम निध पम गम	ग म नि ध	प म रे सा	
आ ऽऽ येऽ ऽऽ	साँ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ स	
३	×	२	०

जीवनकी जो विभिन्न धाराएँ हैं, वे ही राग-रागिनियाँ हैं। प्रत्येक मानव विभिन्न राग-रागिनियोंका मूर्त रूप है। जिस प्रकार एक कुशल गायक विविध

राग-रागिनियोंमें गाता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपना-अपना अलग राग अलापता रहता है। देखना यही है कि वह उस रागके स्वरूपको ठीक-ठीक निबाह पाता है या नहीं।

जो उसे निबाह पाता है, वही कुशल गायक है और जो उसके स्वरोंको बिगाड़ देता है, विकृत रूपमें उनका प्रयोग करता है, वह भोंड़ा कहलाता है। शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार जो ठीक गाता है, उसका मन जैसे प्रफुल्लित हो उठता है, उसी प्रकार जो मानव अपने जीवनको समस्वर बना लेता है, उसीका जीवन सफल माना जाता है। विश्वमें उसीका अस्तित्व सार्थक होता है। यों तो साँस सभी लेते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायके अन्तमें वर्णित 'ब्राह्मी स्थिति' अथवा 'भगवत्प्रेम'के अनन्त, अपरिसीम, चिन्मय महासमुद्रमें सदाके लिये निमग्न हो जानेमें ही मानव-जीवनकी सफलता शास्त्रों एवं संतोंने मानी है। इसी उद्देश्यकी प्राप्ति करानेके लिये इस पुस्तिकामें प्रकाशित आठ कथा-कहानियाँ संकलित की गयी हैं। 'सरगम'के आठ स्वरोंके साधनेसे जैसे गायनमें कुशलता आती है, उसी प्रकार इन आठों कथा-कहानियोंका पठन, श्रवण, मनन एवं तदनुरूप जीवन बनानेसे यह जीवन संगीतमय हो सकता है। इसीलिये इस लघु संग्रहको 'परमार्थका सरगम' नाम दिया गया है। यदि मनुष्य इस 'सरगम' को जीवनभर साधता रहे और इसके फलस्वरूप जीवन-संगीतका एक राग भी ठीक बैठ जाय तो उसका जीवन सफल हो जाय। संग्रहके अन्तमें ३३ पद भी जोड़ दिये गये हैं, जिनका श्रवण, मनन एवं गायन भी उपर्युक्त उद्देश्यकी सिद्धिमें सहायक होगा। इनमेंसे संख्या २६ से ३१ तकके पदोंका किसी विशेष कारणसे अंग्रेजी अनुवाद भी दिया जा रहा है। समयाभावसे अन्य पदोंका अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया जा सका। परंतु मेरा निश्छल विश्वास है कि जो अंग्रेजी भाषा-भाषी लोग मूलको न समझ सकनेके कारण केवल इन छः पदोंके अनुवादका नियमित रूपसे पाठ करेंगे, उन्हें भी अवश्य पारमार्थिक लाभ होगा। किमधिकं सहृदयेषु—

गोरखपुर, कार्तिक शु० १५,
सं० २०२२ वि०

विनीत
चिम्मनलाल गोस्वामी

॥ श्रीहरिः ॥

द्वितीय संस्करणका नम्र निवेदन

भगवत्कृपासे पूज्य श्रीराधाबाबाकी प्रिय पुस्तक 'परमार्थका सरगम'के पुन: प्रकाशनका सुअवसर अब आया है। यह पुस्तक ३७ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी और पूज्य बाबाने अपने स्वजनोंमें इसका वितरण किया था। इसी तरह पूज्य बाबाने दो पुस्तिकाएँ 'विलक्षण प्रेम और विलक्षण कृष्ण' तथा 'पाँच पगडंडियाँ' भी प्रकाशित कराकर अपने स्वजनोंको वितरित की थी। ये दोनों पुस्तकें भी इसी पुस्तकमें परिशिष्ट एक और दो में सम्मिलित कर ली गयी हैं जिससे इस पुस्तकका कलेवर और विस्तृत हो गया है।

पूज्य बाबाने जनवरी १९६५ एवं जनवरी १९७८ में पुन: मौन लिया था। उस समय एकत्रित हुए भाई-बहिनोंके सामने मौनके पूर्व उन्होंने कुछ दिन उपदेश दिये थे। उन दोनों समयके उपदेशोंका सारांश भी इस पुस्तकके अन्तमें परिशिष्ट-३ रूपमें सम्मिलित किया है। इन सभीसे पुस्तककी उपादेयता निश्चित ही बढ़ गयी है। आशा है पाठक इन सभीसे लाभ उठाकर अपने जीवनको परमार्थपथपर आगे बढ़ानेका प्रयास करेंगे।

—प्रकाशक

इसलिये पहले वह उनके समीप रहनेका पर्याप्त अवसर चाहती थी।

'मेरे पास क्या है, बेटी!' महात्माने बड़े प्यारसे उत्तर दिया—'भिक्षुक तुम्हें क्या दे सकता है?'

'मुझे तो यह भिक्षुक, मेरा पिता जो दे सकता है', षोडशीने कहा, 'वह धरतीका कोई धन-वैभव-सम्पन्न पुरुष देनेमें समर्थ नहीं।'

'मैं जो कुछ दे सकता हूँ,' बाबाने तुरंत उत्तरमें कहा, 'उसमें कृपणता नहीं करूँगा—कर भी नहीं पाऊँगा।'

'कम-से-कम एक सप्ताह आप ऊपरके कमरेमें यही निवास करें।' नर्त्तकीने निवेदन किया।

'यदि बेटीकी प्रसन्नता इसीमें है तो मुझे आपत्ति नहीं,' बाबा बोल गये, 'मैं एक सप्ताह रह लूँगा।'

षोडशीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसे जैसे अगाध सम्पत्ति मिल गयी थी।

*　*　*　*

षोडशी नर्त्तकी, बाबाकी बेटीने रात-दिन बाबाकी सेवा की। पिता ऐसे कि उन्हें कुछ अपेक्षित नहीं, किसी सुविधाकी आवश्यकता नहीं; और पुत्री ऐसी जो हर प्रकारसे उन्हें सुख देना चाहती थी।

उसे पिताकी सेवामें अपार शान्ति एवं सुखका अनुभव हो रहा था। सात दिन तो उसे सात घंटेसे भी कम लगे।

नृत्य-वाद्य—सभी बंद थे। सारंगी, तबले और मँजीरे आदि तो उसी दिन किसी एकान्त कमरेमें बंद हो गये थे। अब तो वहाँ धूपकी सुगन्ध उड़ रही थी। पता नहीं, बाबा यहाँ कब चरण रख दें। नृत्य, संगीत एवं सौन्दर्यके प्रेमी प्रतिदिन देहरीसे लौटते और लँगोटीवाले साधुको भली-बुरी कहते।

एकमात्र शुद्ध उज्ज्वल परिधानमें वह बाबाके समीप, कुछ हटकर, कुशासनपर हाथ जोड़कर बैठती। बाबाके लिये माला गूँथती और बाबा उसे भगवान्‌का स्मरण कराकर मानसिक रूपसे अर्पित करा देते। तपस्विनी-जैसे संसारका त्याग कर पूर्ण वैराग्यसे तपमें लीन थी। उसके तनमें, मनमें, प्राणमें—यहाँतक कि रोम-रोममें महात्माका एक-एक शब्द बैठता जा रहा था।

॥ श्रीहरिः ॥

परमार्थका सरगम

[परमार्थ-साधनकी सुन्दर कथाएँ, कहानियाँ और पद]

(१)

महात्मा भल्लूक और राजकुमार

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

राक्षसराज विभीषणका लङ्काके राज्य-पदपर अभिषेक हो जानेपर भगवान् राघवेन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होंने अञ्जनीनन्दन श्रीहनुमान्‌को लङ्केश्वर विभीषणकी आज्ञासे श्रीसीताको अपने विजयी होनेका संवाद सुनाने एवं उनका कुशल-समाचार लेनेके लिये लङ्का भेजा।

विभीषणसे आज्ञा प्राप्तकर पवनपुत्र हनुमान्‌ने लङ्कामें प्रवेश किया और वे माता जानकीके पास पहुँचे, राक्षसियोंसे घिरी माता सीताके चरणोंमें श्रीहनुमान्‌ने अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। माता सीता बड़ी प्रसन्न हुईं, पर चुप रहीं।

श्रीहनुमान्‌ने भगवान् राघवेन्द्रके आदेशानुसार वानर-भालुओंकी सहायतासे लङ्कापर आक्रमण करने एवं रावणके मारे जानेका विस्तृत समाचार सुनाया। उन्होंने कहा—'हे माता! प्रभुने आपके उद्धारकी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली है। अब आप तनिक भी चिन्ता न कर सुखी हो जायँ।'

श्रीहनुमान्‌के ये वचन सुनकर और अपनी ओर प्रसन्नतापूर्वक विभीषणको आते देखकर माता सीता बड़ी प्रसन्न हुईं। उनका गला भर आया। वे कुछ न बोल सकीं।

श्रीहनुमान्‌से नहीं रहा गया। उन्होंने कहा, 'माता! आप किस सोचमें पड़ी हैं। बोलतीं क्यों नहीं?'

माता सीताके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—'प्रिय वत्स! अपने प्राणनाथकी विजयके संवादसे मैं आनन्दविभोर हो गयी, इस

कारण मेरे मुँहसे वाणी नहीं निकल सकी है।'

'वीरवर हनुमान्! ऐसा प्रिय समाचार सुनानेके कारण मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार देना चाहती हूँ, किंतु बहुत सोचनेपर भी मुझे देने योग्य कोई वस्तु दिखायी नहीं देती। इस पृथ्वीतलपर मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं देखती जो इस सुखद संवादके अनुरूप हो और जिसे तुम्हें देकर मैं संतुष्ट हो सकूँ।'

माता सीताकी उक्तिसे महावीर हनुमान् परम प्रसन्न हुए। हाथ जोड़कर उन्होंने बड़ी ही विनयसे कहा—'माता! ऐसी स्नेहपूर्ण वाणी आपहीके मुखसे निकल सकती है। आपके सारगर्भित, स्नेहपूर्ण वचन विश्वकी अगाध सम्पत्तिसे भी श्रेष्ठ हैं। मैं तो अपने प्रभु श्रीरामकी विजयसे ही सब कुछ पा गया। उनके सफलमनोरथ होनेके बाद मुझे और कुछ पाना शेष नहीं रहा।'

भगवती सीताने अत्यन्त मुदित होकर कहा—'वीरवर हनुमान्! ऐसी वाणी तुम्हीं बोल सकते हो। तुम वायुदेवताके यशस्वी पुत्र और धर्मात्मा हो। शरीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तम दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य बहुतसे सुन्दर गुण केवल तुम्हींमें एक साथ विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है।'

इसके उपरान्त मुदित-मन मरुत्-नन्दन श्रीहनुमान्ने माता सीतासे कहा—'माता! इन राक्षसियोंने आपको अनेक प्रकारसे कष्ट पहुँचाया है, डराया-धमकाया एवं अपमानित किया है। आप आज्ञा करें, मैं लात-घूँसोंसे मार-मारकर इन राक्षसियोंका कचूमर निकाल दूँ एवं इनके केश पकड़कर इन्हें चारों ओर घुमाऊँ। साथ ही इनके नाक-कान काटकर कुरुप बना दूँ। इन्हें देखकर मेरे मनमें ज्वाला उठ रही है। इन क्रूर राक्षसियोंको भरपूर दण्ड देनेकी आप मुझे आज्ञा करें।'

श्रीहनुमान्की वाणी सुनकर दयामयीजनकनन्दिनी सीताने बड़ी ही शान्तिसे कहा—'वत्स! ये बेचारी रावणके अधीन थीं। परवश थीं। आज्ञाका पालनमात्र करती थीं। इनका कोई दोष नहीं। मुझे जो कुछ क्लेश सहना पड़ा है, उसमें मेरे पूर्वजन्मके दुष्कर्म ही हेतु थे। सभी प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगते हैं। अतएव मैं इन्हें हृदयसे क्षमा करती हूँ। मेरे मनमें इनके प्रति किञ्चित् भी द्वेष या रोष नहीं है। ये दयाकी पात्र हैं।

दशाननकी मृत्युके बाद इन बेचारियोंने मेरे साथ कोई भी दुर्व्यवहार नहीं किया है।'

भगवती सीताने आगे कहा—इस विषयमें एक पुराना धर्मसम्मत श्लोक है, जिसे किसी व्याघ्रके निकट एक रीछने कहा था—

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः।
ऋक्षेण गीतः श्लोकोऽस्ति तं निबोध प्लवंगम॥

(वा० रा० युद्ध० ११३। ४३)

माता सीताकी सारी बातें सुनकर श्रीहनुमान् बड़े प्रसन्न हुए। भगवती जानकीने जिस रीछकी ओर संकेत किया था, वह प्राचीन कथा अनेक स्थलोंपर कुछ हेर-फेरसे उपलब्ध होती है। कथा इस प्रकार है—

एक बार विशाला नगरीके राजा नन्दका पुत्र युवराज जयपाल अपशकुनोंकी कोई परवा न करके मित्रों तथा ज्योतिषियोंके लाख मना करनेपर भी आखेटके लिये वनमें चला गया। वहाँ एक मृगका पीछा करता हुआ वह अत्यन्त सघन वनमें प्रविष्ट हुआ। पर मृग भागता हुआ उसकी आँखोंसे ओझल हो गया। राजकुमार थका था। वह घोड़ेको बाँधकर पृथ्वीपर लेटना ही चाहता था कि एक बाघकी आहट पाकर घोड़ा बन्धन तोड़कर भाग खड़ा हुआ और राजकुमार भी भयसे वृक्षपर चढ़ गया। पर वहाँ भी उसे एक भालूको देखकर बड़ा भय हुआ और वह घबराकर नीचे उतरने लगा। किंतु वहाँ नीचे भयंकर बाघको देखकर सन्न रह गया। पर भालूने उसे सान्त्वना दी और वृक्षपर ही रहनेके लिये प्रार्थना की। राजकुमार बेतरह घबराया हुआ था और थर-थर काँपता हुआ वृक्षसे गिरना ही चाहता था कि भालूने उसे सँभालकर अपनी गोदमें सुला लिया, आश्वासन दिया और धर्मकथाएँ कहते हुए उसे निश्चिन्त कर सो जानेके लिये बाध्य किया।

राजकुमारके सो जानेपर बाघने भालूको बहकाना शुरू किया। उसने कहा—'यह राजकुमार वन्य जन्तुओंका भयंकर शत्रु है। बड़ा शरारती है। अतः तुम्हारा कर्तव्य है कि वन्य जन्तुओंकी रक्षाके लिये इसे वृक्षसे गिरा दो और मैं इसे खाकर चलता बनूँ।'

इसपर भालूने उत्तर दिया—ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि शरणागतके

परित्यागका पाप सबसे बड़ा होता है और शरणागतकी हत्या करनेवाला विश्वासघाती प्राणी तबतक नरकमें वास करता है, जबतक महाप्रलय नहीं हो जाता। इसी प्रकार एक ओर सारे यज्ञ और उनकी अपरिमित दक्षिणाएँ तथा एक ओर भयभीत प्राणियोंकी रक्षा—ये दोनों समान कहे गये हैं।

एकतः क्रतवः सर्वे सहस्रवरदक्षिणाः।
एकतो भयभीतानां प्राणिनां प्राणरक्षणम्॥
विश्वासघातकाश्चैव शरणागतघातकाः।
वसन्ति नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम्॥

आधी रातके बाद राजकुमारकी नींद खुली। भालूने उसे बाघकी बातोंसे सतर्क रहनेको कहकर सोनेकी इच्छा प्रकट की और एक शाखाको पकड़कर वह सो गया। भालूके सो जानेपर बाघने जयपालसे कहा—'राजकुमार! तुम इस भालूका विश्वास मत करो; क्योंकि यह नखोंवाला है और शास्त्रोंमें नखी, शृंगी, शस्त्री, नदी, स्त्री और राज्यकुलपर विश्वास न करनेका आदेश दिया है। साथ ही इस चञ्चल चित्तवाले प्राणीका प्रसाद भी भयंकर ही है। यह तो तुम्हें मुझसे बचाकर स्वयं खाना चाहता है। अतः तुम इसे गिरा दो।'

व्याघ्रकी बातोंमें आकर राजकुमारने भालूको वृक्षसे गिरा दिया, पर शाखा-प्रशाखा-ग्रहण-कुशल होनेके कारण भालू नीचे न गिर कर एक डालको पकड़कर वृक्षपर ही रुक गया और पुनः स्थिर होकर ऊपर चढ़ गया। अब बाघने उसे पुनः बहकाना आरम्भ किया और राजकुमारको गिरानेके लिये भालूसे आग्रह करने लगा। इसपर भालूने कहा—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥

(वा० रा० युद्ध० ११३। ४४)

'श्रेष्ठ पुरुष दूसरेकी बुराई करनेवाले पापियोंके पापकर्मको नहीं अपनाते हैं— बदलेमें उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहते हैं, अतः अपनी प्रतिज्ञा एवं सदाचारकी रक्षा ही करनी चाहिये; क्योंकि साधुपुरुष अपने उत्तम चरित्रसे ही विभूषित होते हैं। सदाचार ही उनका आभूषण है।'

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥

(वा० रा० युद्ध० ११३। ४५)

'श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि कोई पापी हों या पुण्यात्मा अथवा वे वधके योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन सबपर दया करें; क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे कभी अपराध होता ही न हो।'

लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्॥

(वा० रा० युद्ध० ११३। ४६)

'जो लोगोंकी हिंसामें ही रमते और सदा पापका ही आचरण करते हैं, उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंका भी कभी अमङ्गल नहीं करना चाहिये।' निराश होकर बाघ वनमें चला गया और भालूने राजकुमारको अपनी पीठपर बैठाकर नगरतक पहुँचा दिया।

आगे बढ़नेपर राजकुमारको 'ससेमिरा' नामक पिशाच लग गया और वह बेहोश होकर सदा केवल 'ससेमिरा' 'ससेमिरा' ही कहने लगा।

घोड़ेके अकेले घर आते ही राजा आशंकित हो गया था और राजकुमारकी खोजमें उसने बहुत-से आदमी छोड़ रक्खे थे। वे राजकुमारको घर ले आये। राजकुमारकी बहुत चिकित्सा हुई, पर सब व्यर्थ। अन्तमें राजाने उसे स्वस्थ करनेवाले व्यक्तिको आधा राज्य देनेकी घोषणा कर दी। इसपर प्रधान मन्त्रीने शारदानन्द नामके अत्यन्त विद्वान् व्यक्तिको लड़की बतलाकर पर्देकी ओटमें बैठा दिया और उसने क्रमसे ये चार श्लोक पढ़े। पहला श्लोक था—

सद्भावप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता।
अङ्कमारुह्य सुप्तानां हन्तुः किं नाम पौरुषम्॥

अर्थात् जो विश्वासपूर्वक सच्चे भावसे शरणमें आ गया है, उसे वञ्चित करने अथवा धोखा देनेमें कौन-सा बुद्धि-कौशल है? अपनी ही गोदमें सिर रखकर सोये हुए व्यक्तिकी हत्यामें कौन-सा बड़ा पुरुषार्थ है?

इसपर राजकुमारने एक अक्षर 'स' का परित्याग कर दिया और वह 'सेमिरा, सेमिरा' की आवृत्ति करने लगा। अब शारदानन्दने निम्नलिखित श्लोक पढ़ा—

सेतुं गत्वा समुद्रस्य गङ्गासागरसंगमम्।
ब्रह्महापि प्रमुच्येत मित्रद्रोही न मुच्यते॥

अर्थात् सेतुबन्ध रामेश्वरमें तथा गङ्गासागरके संगममें स्नान करके ब्रह्महत्यारा भी पापसे मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है, किंतु सच्चे मित्रसे द्रोह करनेवालेकी तो वहाँ भी पापसे मुक्ति नहीं होती। अब राजकुमारने प्रथम दो अक्षरों 'स, से' को तो छोड़ दिया और केवल 'मिरा, मिरा' की रट शुरू की।

फिर शारदानन्दने तीसरा श्लोक पढ़ा—

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः।
त्रयस्ते नरकं यान्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥

अर्थात् मित्रद्रोही, कृतघ्न और विश्वासघाती—ये तीनों ही प्राणी तबतक नरकमें निवास करते हैं जबतक महाप्रलय नहीं हो जाता।

यह श्लोक सुनकर राजकुमार सब छोड़कर केवल 'रा, रा' रटने लगा। अन्तमें शारदानन्दने पढ़ा—

राजंस्त्वं निजपुत्रस्य यदि कल्याणमिच्छसि।
देहि दानं द्विजातिभ्यो देवताराधनं कुरु॥

अर्थात् हे राजन्! तुम यदि अपने पुत्रका कल्याण चाहते हो तो ब्राह्मणोंको दान दो और देवताओंकी आराधना करो।

अब तो राजकुमार पूर्ण स्वस्थ हो गया और राजाके पूछनेपर उसने वनकी सारी घटना बतलायी। इसपर राजाने चकित होकर उस कन्यासे पूछा—

गृहे वससि कल्याणि अटव्यां नैव गच्छसि।
ऋक्षव्याघ्रमनुष्याणां कथं जानासि भाषितम्॥

'कल्याणि! तुम घरमें ही सदा रहती हो और वन आदिमें कभी जाती नहीं। फिर भालू, बाघ और मनुष्योंकी एकान्त वार्ता और घटनाओंको कैसे जानती हो?'

इसपर पर्देकी आड़से शारदानन्द बोले—

देवद्विजप्रसादाश्च जिह्वाग्रे मे सरस्वती।
तेन सर्वं विजानामि भानुमत्यास्तिलं यथा॥

राजन्! देवता और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे मेरी जिह्वाके अग्रभागपर सरस्वती वास करती है। इससे मैं सब कुछ उसी प्रकार जानता हूँ, जिस प्रकार देवी भानुमतीके तिलको जान गया था।

बेटी नर्त्तकी

(लेखक—श्रीशिवनाथजी दुबे)

'इस सामनेवाली वाटिकामें रात्रि-विश्राम कर सकता हूँ क्या?'

महात्मा आज दिनभर चलते रहे। बीहड़ पथ था। थक गये थे। पसीनेकी बूँदें उनके उन्नत ललाटपर झलक रही थीं। वे इस नगरमें तब पहुँचे, जब भगवान् अंशुमाली अपनी अरुणिम किरणें समेटकर अस्ताचल ही नहीं पधार गये थे, भगवती यामिनीने अपना कृष्ण पट फैला दिया था। नीले आकाशमें असंख्य तारे चमकने लगे थे।

नगरमें कुछ ही दूर आनेपर तिमंजिली अट्टालिका दिखायी दी। उसके सम्मुख अत्यन्त सुन्दर वाटिका थी। अट्टालिकाके नीचे तीन-चार व्यक्ति हास्य-विनोद कर रहे थे। उनकी मुखाकृतिसे तामस भाव स्पष्ट दीख रहा था, किंतु संतपुरुषको उनसे क्या लेना था? अत्यन्त स्नेह एवं आत्मीयतासे उन्होंने वाटिकाकी ओर संकेत कर उन लोगोंसे उपर्युक्त प्रश्न किया।

'वाटिकामें रात्रि-विश्राम?' अपना कुटिल भाव छिपाकर एकने हँसते हुए तुरंत उत्तर दिया—'अरे महाराज! यहाँ तो रात-दिन संत-महात्माओंका ही जमघट लगा रहता है; सच पूछिये तो ऐसे ही पवित्रात्माओंकी सेवाके लिये यह महल बना है।'

कुछ रुककर उसने फिर कहा—'आप सीधे इस हवेलीमें चले जाइये। बगलकी सीढ़ी तिमंजिलीपर जाती है। वहाँ आपको मालकिन मिल जायँगी। वे आपको प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट करेंगी और इस वाटिकामें एक रात्रि नहीं, अनेक

रात्रियाँ विश्राम करनेकी अनुमति आपको बड़ी सरलतासे मिल जायगी।'

'बेटी!' संत तो संत ठहरे। छल-कपटका पता नहीं। सीढ़ियोंपर चढ़ते सीधे तिमंजिलेके बड़े सुसज्जित कमरेमें पहुँचे। देखा, वहाँ अत्यन्त लावण्यवती षोडशी बालिका बैठी है। उसके समीप तबला, सारंगी, मँजीरे पड़े हैं। महात्मा तुरंत पूछ बैठे—'सामनेकी वाटिकामें आजकी रात्रि विश्राम कर सकता हूँ?'

'बेटी!' इतनी श्रुति-मधुर, ऐसी अमृतमयी, नवजीवन-दायिनी वाणी उसने शायद कभी सुनी नहीं। जबसे उसने होश सँभाला, वासनाकी पैशाचिक छाया ही उसके इर्द-गिर्द घूमती रही है। 'बेटी, बिटिया, पुत्री, बहिन' इन पवित्र शब्दोंसे उसे कभी किसीने पुकारा ही नहीं; ये कौन आ गये 'बेटी' कहनेवाले? षोडशी चकित थी। उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। उसकी धमनियोंमें जैसे अनेक जन्मोंका जमा हुआ रक्त बड़ी तीव्रतासे प्रवाहित होने लगा। साश्चर्य नेत्र उठे तो पलकें भारी हो गयीं। पता नहीं कहाँसे, क्षणार्द्धमें ही खारा पानी उनमें भर गया। पानी आता ही रहा।

'बिटिया, मुझे क्षमा करना।' महात्मा उस कमरेमें पहुँचे नहीं थे। द्वारसे ही उन्होंने समझ लिया; यह नर्तकी है। लौटते ही बोले—'क्षमा करना, नीचे बैठे लोगोंने परिहास किया था और मैंने उसे सत्य समझ लिया। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करे।'

'बाबा!' षोडशी पुकारती हुई द्वारपर दौड़ी। बाबा लौट पड़े थे। दो-ही-तीन सीढ़ी नीचे उतरे होंगे कि अत्यन्त विनीत स्वरोंमें आग्रह सुना—'जरा ठहरिये!'

'बाबा!' महात्माने दृष्टि उठायी। देखा, सचमुच वह बालिका ही तो थी—निष्कलङ्क, निष्पाप। कीचड़में उत्पन्न हुई अत्यन्त सुन्दर, सुगन्धित कमलिनी—जो विश्वाधार प्रभुका कण्ठहार बननेयोग्य थी। उसकी आँखें भर-भर आती थीं। वाणी जैसे अवरुद्ध थी। कठिनाईसे पर अत्यन्त आत्मीयतासे, अगाध विश्वाससे उसने कहा, 'आपने मुझे 'बेटी' कहा है?'

"हाँ, तुम्हें मैंने 'अपनी बेटी' कहा है, 'पुत्री' कहा है।' उसके साश्रुनयन, उसके हृदयके एकान्त कोनेमें पता नहीं, बाबाजीने क्या देख लिया

था कि वे जोरसे कहने लगे—'अब भी 'बेटी' कहता हूँ 'बेटी, बेटी, बेटी!' बोलो, क्या कहना चाहती हो ?''

''पिता, प्राणदाता पिता, परम पूज्य पिता मुझ अभागिनीके द्वारपर जीवनमें पहली बार पधारे हैं।' गणिका-पुत्रीके पता नहीं किस जन्मके कौन-से कर्म उदित हो गये। इतनी श्रद्धा, इतनी प्रीति, संत-चरणोंमें इतना गाढ़ विश्वास तो कभी उसने अपनेमें नहीं पाया था। चरणामें सिर रख दिया था उसने। वह रोने लगी। दोनों चरण उनके भीग गये। और पता नहीं बाबाकी थकान क्या हुई! उनके नेत्र बरसने लगे थे। वे बोल नहीं सकते थे। वाणी जैसे जड़-सी हो गयी थी, बेटी, पुत्री जो दोनों चरणोंको आँसुओंसे धो रही थी, दोनों पैरोंको उसने अपनी बाहोंमें समेट लिया था। विदेहराज जनक जानकीके विदाकालमें धैर्य छोड़कर रो पड़े थे। पर उनकी जानकी तो बाल्यकालसे उनके समीप रही, खेली, खायी, सयानी हुई और बाबाकी यह लाड़ली बेटी—असहाय, निरुपाय और अनाथ-सी पुत्री तो कभी उनके पास रही ही नहीं। पता नहीं, कितनी आपदाएँ उसने सहीं। फिर बाबा कैसे सह पाते ? उनका हृदय जैसे क्षत-विक्षत हो रहा था, बेटी करुण-विलाप जो कर रही थी। ''बेटी' आजतक मुझे किसी पुरुषने नहीं कहा, इस शब्दके लिये मैं तरसती रही; पर आज मेरे भाग्य जग गये जो मेरे पिता मेरे द्वारपर आ गये। अब मैं भी 'बेटी' कहलानेयोग्य हो गयी। अब मेरी भी लालसाएँ पूरी होंगी।''

'बेटी, उठो!' साहस समेटकर किसी प्रकार महात्माने कहा, 'चलो, वहाँ बैठो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।'

तबला, सारंगी, मँजीरा, सोने-चाँदीके वर्कमें लिपटे पानोंसे भरे थाल और विलासकी सामग्रियोंके बीच बाबा बैठ गये। उन्हें किञ्चित् ग्लानि या खेद नहीं था, उनकी बेटी जो वहाँ थी।

'हाँ!' बाबाने बड़े प्यारसे कहा। 'अब तुम्हें जो कहना हो, कहो; मैं बड़े ध्यानसे स्थिरतापूर्वक सब सुनूँगा।'

'आप अपनी बेटीको कुछ दिये बिना ही भाग रहे थे।' नर्त्तकी अब नर्त्तकी नहीं, पुत्री थी। विरक्त साधु पिता कहीं चल देनेकी शीघ्रता न करें,

इसलिये पहले वह उनके समीप रहनेका पर्याप्त अवसर चाहती थी।

'मेरे पास क्या है, बेटी!' महात्माने बड़े प्यारसे उत्तर दिया—'भिक्षुक तुम्हें क्या दे सकता है?'

'मुझे तो यह भिक्षुक, मेरा पिता जो दे सकता है', षोडशीने कहा, 'वह धरतीका कोई धन-वैभव-सम्पन्न पुरुष देनेमें समर्थ नहीं।'

'मैं जो कुछ दे सकता हूँ,' बाबाने तुरंत उत्तरमें कहा, 'उसमें कृपणता नहीं करूँगा—कर भी नहीं पाऊँगा।'

'कम-से-कम एक सप्ताह आप ऊपरके कमरेमें यहीं निवास करें।' नर्त्तकीने निवेदन किया।

'यदि बेटीकी प्रसन्नता इसीमें है तो मुझे आपत्ति नहीं,' बाबा बोल गये, 'मैं एक सप्ताह रह लूँगा।'

षोडशीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसे जैसे अगाध सम्पत्ति मिल गयी थी।

* * * *

षोडशी नर्त्तकी, बाबाकी बेटीने रात-दिन बाबाकी सेवा की। पिता ऐसे कि उन्हें कुछ अपेक्षित नहीं, किसी सुविधाकी आवश्यकता नहीं; और पुत्री ऐसी जो हर प्रकारसे उन्हें सुख देना चाहती थी।

उसे पिताकी सेवामें अपार शान्ति एवं सुखका अनुभव हो रहा था। सात दिन तो उसे सात घंटेसे भी कम लगे।

नृत्य-वाद्य—सभी बंद थे। सारंगी, तबले और मँजीरे आदि तो उसी दिन किसी एकान्त कमरेमें बंद हो गये थे। अब तो वहाँ धूपकी सुगन्ध उड़ रही थी। पता नहीं, बाबा यहाँ कब चरण रख दें। नृत्य, संगीत एवं सौन्दर्यके प्रेमी प्रतिदिन देहरीसे लौटते और लँगोटीवाले साधुको भली-बुरी कहते।

एकमात्र शुद्ध उज्ज्वल परिधानमें वह बाबाके समीप, कुछ हटकर, कुशासनपर हाथ जोड़कर बैठती। बाबाके लिये माला गूँथती और बाबा उसे भगवान्‌का स्मरण कराकर मानसिक रूपसे अर्पित करा देते। तपस्विनी-जैसे संसारका त्याग कर पूर्ण वैराग्यसे तपमें लीन थी। उसके तनमें, मनमें, प्राणमें—यहाँतक कि रोम-रोममें महात्माका एक-एक शब्द बैठता जा रहा था।

'मैं यहाँकी प्रसिद्ध वेश्याकी पुत्री हूँ।' उसने बाबाको बताया। 'माँके रूप-लावण्यकी सर्वत्र चर्चा थी। राजे-महाराजेतक उसका नृत्य देखनेके लिये उसे सम्मानपूर्वक बुलाते। अर्थ उसके पैरोंपर लोटता, धनवानोंकी भीड़ उसके द्वारपर लगी रहती। यह विशाल अट्टालिका, यह सुन्दर वाटिका, लाखोंकी सम्पत्ति—सभी उसकी माँकी अर्जित थी। अभी दो वर्ष पूर्व ही वह सारा वैभव छोड़कर संसार छोड़नेके लिये विवश हुई थी। कराल कालने उसे अपना ग्रास बना लिया।'

'मैं सर्वथा निराधार हो गयी।' नर्त्तकी-पुत्रीने रोते हुए कहा। 'इस धरतीपर मेरा कोई नहीं रहा। किंतु गृध्रकी भाँति मेरे मांसके ग्राहक अपने बनने लगे। मुझे पतनके गर्हित गर्तमें डाल देनेके लिये चारों ओरसे युवकों, धनियोंका जैसे समुद्र उमड़ पड़ा। अब भी उमड़ा आ रहा है; किंतु मैं अपने धर्म-पिताके पवित्र चरणोंकी शपथके साथ कहती हूँ—आपकी पुत्रीका यह अधम शरीर किसी मिट्टीके वासनामय पुतलेके स्पर्शसे सर्वथा सुरक्षित है। मेरा स्त्रीत्व निष्कलङ्क और निर्मल है—आजतक तो है...............' कुछ क्षण रुककर उसने बड़ी गम्भीरतासे कहा—'अब कलसे अपनी पुत्रीके धर्मकी रक्षाका दायित्व पितापर है।'

महात्मा बड़ी दया, बड़े स्नेह और बड़ी ही आत्मीयतासे अपनी धर्मपुत्रीकी ओर देखते हुए उसकी बातें बड़ी ही तन्मयतासे सुन रहे थे। धर्मपुत्री फिर बोली, 'आपके अनुग्रहसे मैं उऋण नहीं हो सकती। मैं अनुभव कर रही हूँ, आपके वेशमें स्वयं विश्वात्मा प्रभु मेरे यहाँ, इस नरक-द्वारपर मेरा उद्धार करने पधारे हैं। किंतु ....' नेत्रोंसे आँसू पोंछकर बाबाके चरण पकड़कर वह बोली—'आज सातवाँ दिन है। सात दिनोंतक मैंने बलपूर्वक आपसे वचन लेकर आपको इस नरकमें रक्खा है। बड़ा भारी पाप किया है मैंने, पर पिता तो पुत्रीके लिये कष्ट सहता ही है। कल भगवान् भुवनभास्करकी प्रथम किरणके निकलनेके साथ ही आप अपने वचनसे मुक्त हो जायँगे—यहांसे चले जानेके लिये स्वतन्त्र होंगे। किंतु आप विश्वास करें, मैंने विशुद्ध हृदयसे आपको संत ही नहीं, अपना धर्म-पिता मान लिया है। मुझे आपसे माँगनेका अधिकार है और मैं यही चाहती हूँ, आपसे यही याचना

करती हूँ कि आप कृपापूर्वक मेरा इस नारकीय जीवनसे त्राण करें। बस, मैं आपसे और कुछ नहीं चाहती।'

'तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, बेटी!' महात्माने अबकी उसका मस्तक चरणोंसे नहीं हटाया। 'जिस क्षण जीवके मनमें जगत्‌से त्राण पानेकी तीव्र कामना उदय होती है, वह करुणा-वरुणालयके चरणोंकी प्राप्तिके लिये विकल होता है, वह क्षण उसके लिये बड़ा ही मूल्यवान् होता है। तुम तो परम पवित्र, महिमामयी, मेरी बेटी हो। कीचड़में उत्पन्न होनेसे क्या होता है, कमलिनी तो श्रीभगवान्‌के अङ्कको शोभा बनती ही है। इसी प्रकार तुम भी दयासिन्धु प्रभुपर समर्पित होकर उनकी बन सकती हो। किंतु इसके लिये त्यागकी आवश्यकता है। सब कुछ छोड़कर ही तुम प्रभुकी हो सकती हो। इसके लिये तैयार होना पड़ेगा।'

'मनसे तो मैंने सब कुछ परित्याग कर दिया है।' अत्यन्त दृढ़तासे नर्त्तकीने उत्तर दिया। 'जिस दिन आपके दर्शन हुए, उसी दिनसे ये पापकी सामग्रियाँ मुझे काटे खा रही हैं। आप मुझे मार्ग बतायें, बतायें—मुझे क्या करना है? इस पाप-पङ्कसे, इस भीषण नरकसे उद्धार पानेके लिये आप मेरा कर्तव्य बतायें।'

'तो बेटी, तुम अपने केवल नृत्यके उपकरण रखकर यह अट्टालिका, वाटिका, वस्त्राभूषण सब बेच दो।' महात्माने आदेश दिया। 'तुम्हारी सम्पत्तिके नामपर तुम्हारे पास कुछ भी न रह जाय। सब नकद रुपये एकत्र कर लो।'

'आज्ञा सिर-माथेपर।' नर्त्तकी अपने वस्त्राभूषणकी पेटी ले आयी। महात्माके सामने ही उसने उसे खोला और नृत्योपयोगी वस्त्राभूषण निकालकर शेष सभी आभूषादि पेटीमें बंद कर दिये और दूसरे दिन दलालके माध्यमसे अट्टालिका, वाटिका आदि सब कुछ बिक गया। लगभग साढ़े छः लाख रुपये एकत्र हुए।

'इन रुपयोंका एक रत्नजटित अत्यन्त सुन्दर मुकुट बनवा दो।' षोडशी नर्त्तकी अब अट्टालिकामें नहीं, नगरके एक छोटे, पर स्वच्छ भवनमें थी। महात्माने कहा—'यह मुकुट नगरके इस मन्दिरमें विराजित प्रभुको धारण कराना है।'

'जैसी आज्ञा।' नर्तकीने स्वीकार किया।

मुकुट बनना आरम्भ हुआ और लगभग एक मासमें तैयार हो गया। महात्माने मुकुट देखा तो हर्षातिरेकसे उनके मुँहसे निकल गया 'बेटी, सचमुच तुम धन्य हो। तुम्हारा जीवन सफल हो चला है, बिटिया रानी!'

'आपके बताये सारे पद मुझे कण्ठस्थ हो गये हैं।' अत्यन्त विनम्र वाणीमें नर्तकीने कहा। 'और एक लाख नाम-जप भी प्रतिदिन पूरा होता जा रहा है।'

'भगवान् तुम्हारा मङ्गल करेंगे बेटी!' कहते-कहते महात्मा जैसे ध्यानस्थ हो गये।

*　　　*　　　*　　　*

'वेश्यापुत्री स्वयं भगवान्‌के श्रीविग्रहको मुकुट पहनाये, यह कैसे सम्भव है?' मन्दिरके अधिकारीने सुस्पष्ट कह दिया। 'वेश्याके घृणित धनसे निर्मित रत्नजटित मुकुट वेश्यापुत्री श्रीभगवान्‌को किसी प्रकार नहीं पहना सकती।'

'भगवान् भावके भूखे हैं'—महात्माने मन्दिरके अधिकारियोंके सम्मुख शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे कहा। 'उन्हें हृदयका सच्चा प्यार चाहिये। शुद्ध भक्ति उन्हें अभीष्ट है। स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, कीट-पतंग—जो भी उन्हें प्रेमसे चाहते हैं, पुकारते हैं, प्रभु तत्क्षण वहीं दौड़े चले जाते हैं। आप विचार करें—विदुरके शाक और भक्तिमयी शबरीके बेर उन्होंने कैसे ग्रहण किये? ग्राहग्रस्त गजके लिये वे क्यों दौड़ पड़े? विशुद्ध हृदयकी प्रीतिसे वे निखिल ब्रह्माण्डनायक वशमें हो जाते हैं।'

कुछ क्षण रुककर महात्माने फिर कहा—'धनमद भयानक होता है। धनकी शक्ति भी अद्‌भुत होती है। उस धनको कुछ ही देरमें त्यागकर भगवत्सेवामें अर्पित कर देना भगवत्प्रीतिका परिचायक है। मेरा विश्वास है यह वेश्यापुत्री नर्तन-कलामें विशारद और परम पवित्र कन्या है। इसे दयामय भगवान्‌के श्रीविग्रहको स्वयं अपने हाथों मुकुट पहनानेकी आज्ञा मिल जानी चाहिये।'

'वेश्यापुत्रीकी महिमाके गीत गाते आप थक नहीं रहे हैं।' मन्दिरके प्रधान अधिकारीने क्रोधके आवेशमें कहा। 'आप साधु-वेषधारी पुरुष हैं, मुझे कुछ कहते हुए शालीनताका ध्यान रखना पड़ रहा है।'

प्रधान अधिकारीका क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। वे कहते गये 'गणिकापुत्रीको भगवान्‌के श्रीविग्रहको मुकुट पहनानेका आदेश देनेमें मुझे एक शर्तपर आपत्ति नहीं होगी।'

'आप अपनी शर्त बतायें'—महात्माने तुरंत पूछा।

'मन्दिरके बाहरी प्राङ्गणमें यह मुकुट लेकर नृत्य करे।' प्रधानाधिकारीने कहा। 'यदि आधी घड़ीमें भगवान्‌का अचल श्रीविग्रह स्वयं उसके समीप आकर उसके हाथसे मुकुट धारणकर ले तो मुझे स्वीकार है; किंतु यदि इतने समयमें श्रीभगवान्‌ने स्वयं आकर मुकुट धारण नहीं किया तो राजाज्ञासे आपका मस्तक धड़से पृथक् कर दिया जायगा। बोलिये, स्वीकार करते हैं?'

'जैसी भगवदिच्छा।' बड़ी ही शान्तिसे संतने उत्तर दिया। मुझे आपकी शर्त स्वीकार है।

* * * *

'बेटी!' दूसरे दिन दो घड़ी रात्रि रहते ही महात्माने अपनी धर्मपुत्रीसे कहा। 'आजकी वह मङ्गलमयी घड़ी है, जब मैं तुम्हारा भिक्षुक पिता तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ।............'

महात्माके भरे नेत्र धर्मपुत्री नहीं देख सकी। वे कहते जा रहे थे—'अणु-परमाणुमें व्याप्त जो प्रभु कीट-पतंगादि सबको देते हैं वे ही तुम्हें भी देंगे। पर वे तुम्हें वह देंगे, जो अनन्त जन्मोंसे तुम नहीं पा सकी थी और अब उसे पा लेनेपर तुम्हें कुछ भी पाना शेष नहीं रह जायगा।'

बाबाने आगे कहा—'तुम नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर अच्छी प्रकार स्नान कर लो। इसके अनन्तर नृत्यके वस्त्राभरणसे सुसज्जित होकर श्रीभगवान्‌के समीप चलो। बेटी रानी! विश्वास करो, तुम्हारा धर्मपिता आज तुम्हें तुम्हारे जीवन-सर्वस्व, प्राणधनके हाथों समर्पित कर और इस प्रकार अपने कर्तव्यकी पूर्ति करके निश्चिन्त हो जाना चाहता है।'

'बाबा!' नर्तक-कुमारीने संतके चरणोंमें सिर रख दिया और वह

सिसकियाँ लेने लगी।

'आज तो तुम्हारा सौभाग्य-सूर्य उदय होने जा रहा है, पगली!' महात्मा जैसे पुत्रीके प्यारके बन्धनमें बँध गये थे। रह-रहकर उनके नेत्र भर आते। वे बोले—'जीवनधनके चरणोंमें जीवन समर्पित कर अखण्ड सौभाग्यवती होनेके अवसरपर रोना कैसा? शीघ्रता करो।'

नर्त्तकी महात्माके आदेशानुसार स्नानादिके लिये चल पड़ी।

* * * *

तमसाच्छन्न रात्रि बीती। उषाने पूर्व क्षितिजपर सिंदूर बिखेर दिया और कुछ देर बाद मुसकराते हुए अंशुमाली उदित हुए। लगभग तीन घड़ी दिन चढ़ आया।

मन्दिरके प्रवेशद्वारसे आगे-आगे गणिका, उसके पीछे विरक्त महात्मा और उनके पीछे सारंगी, तबला और मँजीरा लिये साजिंदोंने प्रवेश किया। सहस्रोंकी दृष्टि उनपर पड़ी और उनकी सहस्रोंपर। आज नगरके प्रायः सभी स्त्री-पुरुष श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें एकत्र हो गये थे। 'भला, गणिका-पुत्रीके हाथसे श्रीभगवान्‌का अचल विग्रह मुकुट धारण करेगा? और महात्माका मस्तक धड़से पृथक् कर दिया जायगा?'

सबमें कौतूहल! तमाशा देखनेकी वृत्ति! भीड़की सीमा नहीं। सारा नगर उलट पड़ा था। स्वयं नरेश पधारे थे और महात्माने देखा, एक ओर नग्न खड्ग धारण किये बधिक भी खड़ा था!

महात्मा शान्त थे और नर्त्तकी प्रसन्न।

नर्त्तकीका अनुपम रूप, अद्भुत लावण्य, नृत्यकी सात्त्विक वेषभूषामें वह अलौकिक अप्सरा-सी सुन्दरी और महर्षिके आश्रमकी तपस्विनी ऋषिकुमारी-सी सात्त्विक दीख रही थी। उसके दोनों हाथोंमें रत्नमय चमकता हुआ मुकुट विचित्र शोभा दे रहा था। साजिंदे प्रस्तुत थे। उन्हें पारिश्रमिकके रूपमें उसने अपना एकमात्र हार उतारकर दे दिया था।

सबकी आँखें नर्त्तकीपर थीं। उसकी दिव्यता, उसके लावण्य और उसके भोलेपनको सहस्रों आँखें अपलक देख रही थीं और वह मन्दिरके बाहरी प्राङ्गणमें भगवान्‌के श्रीविग्रहसे लगभग तीस गजकी दूरीपर खड़ी

होकर श्रीभगवान्‌के विग्रहकी ओर देख रही थी। उसे जैसे विशाल जन-समुदायका पता ही नहीं था। उसके प्राण जैसे भगवान्‌के श्रीविग्रहमें समाते जा रहे थे। उसका अङ्ग-अङ्ग, उसका रोम-रोम जैसे श्रीभगवान्‌के अङ्ग-अङ्ग, रोम-रोममें विलीन होता जा रहा था।

'नृत्य आरम्भ करो, बेटी!' महात्माने श्रीभगवान्‌की ओर देखते हुए नर्त्तकीसे धीरेसे कहा।

नर्त्तकीको जैसे होश आया। सारंगी जैसे मुसकराती हुई मीठे स्वरमें आलाप लेने लगी, तबलेपर थाप पड़ी। वह गमक उठा। मँजीरा बज उठा। नर्त्तकीने पादतलकी धीरेसे ठोकर लगायी, घुँघरू झनझना उठे।

विशाल जन-समुदाय साँस बाँधे यह दृश्य देख रहा था। नर्त्तकीके घुँघरू और वाद्यके अतिरिक्त कहीं कोई शब्द नहीं सुनायी दे रहा था।

नर्त्तकीके पैर हिले और पहली थेई समपर आयी। कुछ लोगोंने देखा तो आश्चर्यचकित रह गये, भगवान्‌का श्रीविग्रह अपने स्थानसे एक बित्ता ऊपर उठ गया।

दूसरे समपर उस महात्माकी धर्मपुत्रीके पैर पड़े और 'श्रीभगवान्‌की जय हो।' विशाल जन-समुदाय चिल्ला उठा। सबने प्रत्यक्ष देखा, प्रभुका अचल श्रीविग्रह मन्दिरके द्वारपर आ गया था।

महात्माके नेत्र झर रहे थे और बेटी नर्त्तकीकी विचित्र दशा हो रही थी। उसे अपने शरीरकी सुधि विस्मृत होती जा रही थी।

'श्रीभगवान्‌की जय हो!'

'बेटी नर्त्तकीकी जय हो!'

जन-समुद्र गर्जने लगा। उसे नियन्त्रित करनेके लिये राजाको कठिनाई हो रही थी।

तीसरे समपर उक्त परम पवित्र कन्याका पैर पड़ते ही भगवान्‌का श्रीविग्रह उसके समीप धरतीसे एक बित्ता ऊपर खड़ा हो गया था और मुकुट धारण करनेके लिये उनकी ग्रीवा झुक गयी थी।

'बेटी! मुकुट धारण करा दो।' बड़ी कठिनाईसे बाबा बोल पाये, उनकी आँखें झर रही थीं।

बेटी नर्तकीने किसी प्रकार हाथ उठाकर श्रीभगवान्‌को मुकुट धारण कराया और उनके चरणोंमें लिपट गयी। उसे बाह्य-जगत्‌का ध्यान नहीं रह गया था। अभी आधी घड़ी नहीं हुई थी।

'बेटीके प्राण प्रभुमें समा गये।' संकेतसे महात्माने मन्दिरके प्रधान अधिकारीसे कहा। 'इसे प्रभुके श्रीविग्रहसे अलग हटा लें।'

प्रधानाधिकारी उसे हटानेके लिये उठे; किंतु महात्माको लगा, जैसे प्रभु प्रधानाधिकारीका स्पर्श उक्त भक्तिमती नर्तकीकी निर्जीव देहसे भी नहीं चाहते। महात्माने प्रधानाधिकारीको रोक दिया और राजासे कहा—'मुझे ऐसा अनुमान हो रहा है कि श्रीभगवान्‌की इच्छा नहीं हो रही है कि प्रधानाधिकारी इस समय श्रीविग्रहका स्पर्श करें। यदि आज्ञा हो तो मैं इसे श्रीविग्रहसे अलग कर दूँ।'

राजाने तत्क्षण अनुमति दे दी।

धर्मपिता (महात्मा) ने अपनी (धर्म-)पुत्रीका निर्जीव शरीर उठा लिया और वे मन्दिरके प्रवेशद्वारसे बाहर निकल आये। उनके नेत्र भरे हुए थे। पुत्री जो विदा हो गयी थी!

थोड़ी दूरपर, जहाँसे श्रीभगवान्‌का द्वार दीख रहा था, बेटी नर्तकीके निर्जीव देहको रख दिया।

'यहीं इसको समाधि दे दो।' महात्माने अपने पीछे-पीछे आये नरेशसे कहा।

'जैसी आज्ञा!' नरेशने तुरंत स्वीकार किया। उसने महात्माका प्रभाव देख ही लिया था।

महात्माने वहींसे श्रीविग्रहकी ओर हाथ जोड़े और कुछ प्रार्थना की। लोगोंने देखा, भगवान्‌का श्रीविग्रह स्वयं अपने स्थानपर चला गया। रत्नजटित मुकुट उनके मस्तकपर चमक रहा था।

* * * *

नरेश, मन्दिरके प्रधानाधिकारी और जन-समुदाय महात्माका चरण-स्पर्श करनेके लिये आगे बढ़े, किंतु प्रयत्न करनेपर भी वे नहीं मिल सके। पता नहीं कब किधर चले गये।

दक्षिण भारतकी बेटी नर्तकीका जीवन सचमुच सफल हो गया।

(३)

महात्मा कपोत

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

करुणामृतसिन्धु भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीसे कहा था कि 'लक्ष्मण! पक्षी आदि (सभी) तिर्यग् योनियोंमें भी धर्मचारी, शरणागतवत्सल साधु-महात्मा देखे जाते हैं—

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि॥

(वा० रा० अरण्य० ६८। २४*)

अतएव 'महात्मा कपोत' शीर्षकसे किसी प्रकार भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये; क्योंकि वस्तुतः व्यासादि सभी महर्षियोंने इन कपोतको 'महात्मा' शब्दसे अभिहित तथा समादृत किया है। किमधिकम्, इनके शत्रु व्याधके मुँहसे भी हठात् यही ध्वनि प्रकट हुई थी—

नूनं मम नृशंसस्य प्रत्यादर्शः सुदर्शितः।
प्रयच्छता स्वमांसानि कपोतेन महात्मना॥

(महा० शान्ति०, आपद्धर्म०, पञ्चतन्त्र काकोलूकीय ८। १६९)

उपदिष्टो हि मे धर्मः कपोतेन महात्मना।

(महा० शान्ति० १४७। ५)

इन कपोत महात्माकी चर्चा वाल्मीकि-रामायण युद्धकाण्ड, महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १४३ से १४९, ब्रह्मपुराण गौतमी-माहात्म्य अध्याय ८०, पञ्चतन्त्र काकोलूकीय कथा ८ तथा अन्यत्र स्कन्दादि पुराणोंमें भी आती है। साथ ही बौद्ध-जातकों और जैन-ग्रन्थोंमें भी मिलती है।

---

* प्रभुने यह कृपापूर्ण उद्गार जटायु-मरणके अवसरपर व्यक्त किया था; किंतु उनके इस कथनमें 'सर्वत्र' पदसे इन 'कपोत महात्मा' की कथा ही विशेष प्रतिध्वनित होती है; क्योंकि वे उन दिनों गोदावरी-तटपर ही निवास कर रहे थे। यह घटना भी उसीके तटवर्ती 'कपोत तीर्थ' की है। अनुमान होता है कि प्रभुने यह कथा वहाँके निवासी मुनियोंसे उन्हीं दिनों सुनी थी। फिर तो यह घटना उनके मनमें मानो घर कर गयी और इसकी वे प्रायः चर्चा करते ही रहते थे। तभी विभीषण-प्रसङ्गपर भी उन्होंने इसे बड़े प्रेमसे स्मरण किया था।

मूल श्लोक (प्रथम) सभी जगह एक ही प्रकारसे प्राप्त है। वह है—

श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः॥

(वा० रा० ६।१८।२४; पञ्चतन्त्र ३।८।१३२; महा० शान्ति० १४३।४)

महाभारत आदिमें इसके वक्ता भिन्न-भिन्न हैं; पर वाल्मीकि रामायणमें विभीषण-शरणागतिके समय सुग्रीवद्वारा उन (विभीषण) के प्रत्याख्यान किये जानेपर अन्तमें भगवान् श्रीरामने कण्डु आदिके उदाहरणके बाद कहा कि 'मैं उस कबूतरसे तो गया-गुजरा नहीं हूँ, जिसने अपनी शरणमें आये अतिथिकी अपने मांस-दान आदिसे परिचर्या की थी।' इसीके आधारपर यह कथा सर्वत्र प्रचारित हुई, जो मूलतः इस प्रकार है—

पवित्र गोदावरी नदीके समीप ब्रह्मगिरिपर एक बड़ा भयंकर व्याध रहता था। वह प्राणियोंके लिये कालके ही समान था। वह प्रतिदिन साधु-ब्राह्मणों, यति-मुनियों तथा मृग-गवादि पशुओं एवं पक्षियोंका दारुण संहार किया करता था। उसके हृदयमें लेशमात्र भी दया नहीं थी। वह मानो क्रोध, क्रूरता आदि दुर्गुणोंका मूर्तिमान् रूप था और उसका कोई भी मित्र-सम्बन्धी या बन्धु-बान्धव न था।

नैव कश्चित्सुहृत्तस्य न सम्बन्धी न बान्धवः।
स तैः सर्वैः परित्यक्तस्तेन रौद्रेण कर्मणा॥

(पञ्चतन्त्र ३।८।१३४)

एक दिन वह ब्रह्मगिरिके मध्यस्थित अरण्यानीके अन्तस्तम मार्गमें प्रविष्ट हुआ और उसने अनेकों पशु-पक्षियोंकी हत्या की। कुछको जीवित ही पकड़कर पिंजरेमें डाल दिया। इस प्रकार पूरा आखेट करके तीसरे पहर वह घरको लौट ही रहा था कि क्षणभरमें आकाशमें घनघोर घटाएँ घिर आयीं और बिजली कौंधने लगी। तीक्ष्ण वायु चली और पानीके साथ प्रचण्ड उपल-वृष्टि भी हुई। प्रलयकालके समान भीषण वृष्टिके कारण उस अरण्यानीका स्वरूप बड़ा भयंकर हो गया। व्याध पहलेसे ही थका हुआ था। अब वह राह चलते और भूलते-भटकते बेतरह परेशान हो रहा था। इधर जलकी अधिकताके कारण जल, स्थल और गड्ढे सब समान हो रहे थे। कहीं

भी पैर रखनेका साहस नहीं होता था। अब व्याध सोचने लगा, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किसकी शरण लूँ? थोड़ी देरमें ही आकाश स्वच्छ हुआ और तारे निकल आये। फिर उसे एक वृक्ष भी दीखा और संयोगसे उसके मुँहसे ये शब्द निकल पड़े—'मैं अब इन्हीं वनस्पति देवताकी शरण जाता हूँ।'

साञ्जलिः प्रणतिं कृत्वा वाक्यमाह वनस्पतिम्।
शरणं हि गतोऽस्म्यद्य देवतामिहवासिनीम्॥

(गोविन्दराज०)

शरणं यामि यान्यस्मिन् दैवतानि वनस्पतौ॥

(महा० शान्ति० १४३। ३३)

तस्याहं शरणं प्राप्तः स परित्रातु मामिति।
शीतेन भिद्यमानं च क्षुधया गतचेतसम्॥

(पञ्चतन्त्र ३। ८। १४)

इधर उसी वृक्षपर इन कपोत महात्माका भी निवास था। इनकी स्त्री कपोती भी बड़ी पतिव्रता थी। वह सबेरेसे ही चारा चुगनेके लिये गयी। उसके वापस न लौटनेसे कपोतको बड़ी ही चिन्ता हो रही थी। वह कहने लगा—'आज बड़ी तेज आँधी और पानी आया। कपोती अभीतक नहीं लौटी। उसके बिना तो यह घर ही उजाड़ हो गया।'

वातवर्षो महानासीन्न चागच्छति मे प्रिया।
तया विरहितं ह्येतच्छून्यमद्य गृहं मम॥
पतिव्रता पतिप्राणा पत्युः प्रियहिते रता।
यस्य स्यादीदृशी भार्या धन्यः स पुरुषो भुवि॥

इधर बेचारी कपोती उस व्याधके ही पिंजरेमें बंद थी। वह पतिद्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और कहने लगी—'वस्तुतः आज मैं धन्य हो गयी; क्योंकि जिस स्त्रीपर पतिदेवता प्रसन्न हों, वह स्त्री स्त्री मानने योग्य है! पतिके प्रसन्न रहनेपर सभी देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। वह स्त्री दावाग्निदग्ध लताके समान ही जल जाय, जिसका पति उससे प्रसन्न न रहे।'

न सा स्त्रीत्यभिमन्तव्या यस्यां भर्ता न तुष्यति।
तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः॥

दावाग्निना विदग्धेन सपुष्पस्तबका लता।
भस्मीभवतु नारी सा यस्यां भर्ता न तुष्यति॥

तथापि आज आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें। देखिये, आपके द्वारपर आज एक अतिथि पधारे हैं। ये शीतार्त होकर निश्चेष्ट-से हो रहे हैं। इनकी सेवा-शुश्रूषा तथा आतिथ्य आप अवश्य करें। इनके द्वारा मेरे पकड़े जानेपर आप रुष्ट न हों; क्योंकि मैं तो अपने पूर्वकर्मसे ही पकड़ी गयी हूँ। मुझे तो आज कोई-न-कोई बाँधता ही। अत: इनका क्या दोष है?

मा चास्मै त्वं कृथा द्वेषं बद्धानेनेति मे प्रिया।
स्वकृतैरेव बद्धाहं प्राक्तनैः कर्मबन्धनैः॥
दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनव्यसनानि च।
आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्॥
तस्मात्त्वं द्वेषमुत्सृज्य मद्बन्धनसमुद्भवम्।
धर्मे मनः समाधाय पूजयैनं यथाविधि॥

'हे पतिदेव! दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और व्यसन—ये सब प्राणियोंके अपने ही अपराधरूप वृक्षके फल होते हैं। अत: आप मेरे पकड़े जानेके कारण इनसे द्वेष मत कीजिये और धर्ममें मन स्थिर करके इनकी विधिपूर्वक पूजा कीजिये।'

यह सब सुनकर कपोत महात्मा उस व्याधके पास पहुँचा और उसने उससे कहा—'भद्र! आप संताप न करें। यह तो आपका अपना ही घर है। आप निश्चिन्त होकर विश्राम करें।' फिर कपोतने बड़े परिश्रमसे सूखी घास और लकड़ियोंको एकत्र किया और बहुत ही दूर जाकर वह अपनी चोंचमें जलती लकड़ी ले आया। सूखी घास और लकड़ियाँ जलाकर उसने व्याधकी सर्दी दूर की।

अब वह कबूतर पश्चात्ताप करने लगा—'अरे देखो तो! संसारमें कुछ लोग तो प्रतिदिन हजारों प्राणियोंको ही भोजन प्रदान करते हैं और कुछ लोग सैकड़ोंको; पर मैं कितना अभागा हूँ कि अपना पेट भी पालनेमें असमर्थ हूँ। वस्तुत: जिस शरीरसे एक भी अतिथिकी परिचर्या न हो सके, उसे तो भस्म ही कर देना चाहिये। फिर क्यों न मैं इस तुच्छ शरीरकी आहुति देकर

अतिथिकी क्षुधा दूर कर दूँ?' *

इस प्रकार मनमें सोचकर कपोतने अग्निकी तीन परिक्रमाएँ कीं और वह प्रज्वलित अग्निमें कूद पड़ा।

'अरे, मैं तो घोर नरकमें जाऊँगा,' व्याध चिल्ला पड़ा। उसने कहा—'देखो, इस महात्मा कपोतने मुझे दुष्टके लिये अपनी जान दे दी। मुझे धिक्कार है!' फिर तो उसने लाठी, जाल, पिंजरा आदि सब वहीं फेंक दिया। पिंजरेसे बाहर आते ही कबूतरीने भी अग्निकी परिक्रमा करके अपने पतिदेवका अनुगमन किया और अपने पति कपोतके साथ वह भी भस्म हो गयी।

तत्क्षण ही आकाशमें जयध्वनि और पुष्पवृष्टिके साथ एक दिव्य विमान दृष्टिगोचर हुआ। कपोतदम्पति उसपर चढ़कर स्वर्ग चले।

यह देख व्याधने कहा—'महात्मन्! मुझ शरणागतको यों ही नरकमें छोड़कर आपका यह स्वर्ग-गमन आपके अनुरूप नहीं होगा। आप कृपया मेरा भी उद्धार करें।'

यह सुनकर कपोतने उत्तर दिया—'गौतमी-स्नानसे तुम्हारा परम श्रेय होगा। तुम एक पक्षतक गोदावरीमें स्नान करो। इससे तुम्हारे सारे पाप धुल जायँगे और जब निष्पाप होकर तुम एक बार पुनः गौतमी-स्नान करोगे तो तुम भी स्वर्गमें मेरे ही पास पहुँच जाओगे और वहाँ मेरे साथ ही रह सकोगे।'

व्याधने वही किया और इस प्रकार कपोत, कपोती और व्याध—तीनों ही स्वर्गमें पहुँचे।

गोदावरी नदीके तटपर जहाँ यह घटना घटी थी, वह 'कपोततीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह आज भी उस 'कपोत महात्मा' का स्मरण दिलाता हुआ हृदयको पवित्र करता है। वहाँ किये गये स्नान, दान, जप, तप, श्राद्ध, यज्ञ आदि सभी धर्म-कर्म अक्षय होते हैं।

---

*सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः।
मम त्वकृतपुण्यस्य क्षुद्रस्यात्मापि दुर्भरः॥
तत्तथा साधयाम्येतच्छरीरं दुःखजीवितम्।
यथा न भूयो वक्ष्यामि नास्तीत्यर्थिसमागमे॥
स निनिन्द किलात्मानं न तु तं लुब्धकं पुनः॥

(पञ्चतन्त्र ३।८।१६४)

(४)

गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल कृष्ण

(लेखक—एक अधम)

वही गजानन, विघ्नविनाशन, हरण सकल संकट-बाधा।
वही शारदा, पाकर जिसका करुणा-कण केवल आधा॥
शब्द-अर्थ-रस भावादिकको अनायास जाता साधा।
जय राधा, जय राधा-राधा, जय राधा, जय श्रीराधा॥
त्याग और निस्स्वार्थ प्रेमकी जो प्रतिमा अप्रतिम भली।
महाभावरूपा रसेश्वरी, जिनके गुण-गणकी अवली॥
वंशीमें हरि गाते फिरते वृन्दावनकी गली-गली।
जय राधा, जय राधा-राधा, कृष्णप्रिया-वृषभानुलली॥

तीस वर्ष वनविभागमें काम करते हो गये थे, परंतु ऐसा पावन प्रसङ्ग, ऐसा सुन्दर सौभाग्य कभी नहीं आया था। गिरिराजके चारों ओर चौरस मार्ग बनाने तथा मनोहर वृक्षावली लगानेका काम सौंपा गया था। महीनोंका काम था। कैम्पमें रहना पड़ता था। उन दिनों कुसुम-सरोवरके पास अपना कैम्प लगा था। दीपावलीकी छुट्टियाँ हो चुकी थीं। चार-छः व्यक्तियोंका कर्मचारी दल घर चला गया था। छुट्टियोंके बाद ही बड़े साहब निरीक्षणके लिये आनेवाले थे। इसलिये एक चपरासीको लेकर मैं रुक गया था।

उस दिन आकाशमें दिनभर मेघोंका मरुद्गणोंके साथ संघर्ष चलता रहा। बादल आकाशको छा लेना चाहते थे और वायु उनको तितर-बितर करनेके प्रयासमें रत था। संध्या होते-होते पवनदेवकी बलवती भुजाएँ भी थक चलीं। गगन घनाच्छन्न हो उठा। फुहारें पड़ने लगीं। यह दृश्य देखकर मुझे श्रीभट्टजीका—

'भींजत कब देखौं इन नैना।'

—वाला पद याद हो आया। मैं उसे गुनगुनाने लगा। इतनेमें ही सुमधुर कीर्तन-ध्वनि कानोंमें पड़ी—

'गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल कृष्ण।'

स्वरमें कुछ ऐसा आकर्षण और माधुर्य था कि मैं रुक न सका।

कैम्पके बाहर आकर खड़ा हो गया। कीर्तनका स्वर निकट आता जा रहा था। शीघ्र ही सौ-दो-सौ व्यक्तियोंका एक दल आता दिखायी दिया। यह अनुमान तो तुरंत हो गया कि ये लोग गिरिराजकी परिक्रमामें निकले हैं। आये दिन ऐसा दृश्य देखनेको मिलता था; परंतु कीर्तनका ऐसा मीठा और उन्मादी स्वर पहले कभी सुना याद नहीं पड़ता।

अचानक पश्चिममें बादल कुछ फट गये। डूबते हुए सूर्यकी लाल-लाल किरणोंने यात्रियोंकी आकृतियाँ स्पष्ट कर दीं। आगे-आगे एक महात्मा चल रहे थे। उनका दीर्घ एवं कुञ्चित कुन्तलराशिसे मण्डित मुखमण्डल पयद-प्राचीरमें बने गवाक्षसे झाँकते हुए दिनमणिसे कम तेजस्वी नहीं था। बल्कि आकाशरूपी दर्पणमें विवस्वान् महात्माजीके मुखका प्रतिबिम्ब-सा लग रहा था। वे हृदयपर हाथ रखे चल रहे थे। चल क्या, भाग रहे थे। बड़ी तीव्र गति थी उनकी। मानो विरह-विह्वला राधाको श्रीकृष्णकी कोई झलक दीख गयी हो और छातीपर हाथ रखे वे उसके पीछे दौड़ रही हों। मैं समीप खिंचा चला गया। बिना रुके ही उन्होंने मेरी ओर देखा। आँखोंमें करुणा और स्नेहका सागर लहरा रहा था। अधरोंपर था स्मित हास्य। आँखें बंद करके उस छविको मैं हृदयमें उतारने लगा। वे लोग आगे बढ़ते गये। मेरी आँखें खुलीं, तबतक वे लोग ओझल हो चुके थे। कीर्तनका स्वर कानोंमें अब भी अमृत घोल रहा था—

'गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल कृष्ण।'

कुछ देर बाद जोरकी बरसात आ गयी और आँधी भी चलने लगी। मैं उन यात्रियोंके विषयमें ही सोचता रहा। नींद बहुत विलम्बसे आयी। अतः दूसरे दिन उठा, तबतक दिन बहुत चढ़ चुका था। उस समय आकाश एकदम साफ था। लगभग ग्यारह बजे नित्य-नियमसे निवृत्त होकर मैं उसी दिशामें चल पड़ा, जिधर वे लोग गये थे। लगभग दो मील जानेके पश्चात् घनी छायावाला एक विशाल वृक्ष मिला। उसकी शीतल छायामें खड़े होनेके लोभको मैं संवरण न कर सका। यकायक एक डालपर एक झोला दिखायी पड़ा। उस झोलेको मैं उस दलके एक व्यक्तिके कंधेपर भी देखा था। ऐसा लगता है कि वर्षाके तीव्र होनेपर इस वृक्षके नीचे वे लोग ठहरे होंगे।

झोलेवालेने झोलेको वृक्षपर टांग दिया होगा और चलते समय वह उसे उतारना भूल गया। मैंने उन लोगोंका पता लगानेकी बहुत चेष्टा की, किंतु सफलता हाथ लगी नहीं। झोलेमें है—एक कलम, एक 'राधा-कृपा कटाक्ष-स्तवराज' की छपी पोथी और महाभारतके एक उपाख्यानकी पाण्डुलिपि। इसमें कोई ऐसा कागज नहीं मिला, जिससे उस दलके किसी व्यक्तिका नाम पता जाना जा सके। उन्हें पानेका और कोई उपाय न देखकर मैं उस पाण्डुलिपिको ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर दे रहा हूँ। उस दलके व्यक्तियोंका ध्यान आकृष्ट करनेके लिये उनके कीर्तनके स्वरोंको ही मैंने अपनी वार्ताका शीर्षक बनाया है और उस पाण्डुलिपिके मङ्गलाचरणसे ही आरम्भ की है अपनी यह कथा। अब पढ़िये वह उपाख्यान—

(१)

मध्यदेशमें एक निरक्षर ब्राह्मण रहता था। श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होकर भी उसने विद्याका सेवन नहीं किया था। ब्राह्मणोंके आचार और धर्मसे भी वह अनभिज्ञ था। घरकी सम्पत्ति समाप्त हो जानेपर वह भिक्षा-वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करने लगा। उसका नाम था—गौतम।

एक बार भिक्षा माँगनेके लिये वह एक सम्पन्न किंतु दस्युओंके गाँवमें जा निकला। उस गाँवमें एक धनी डाकू रहता था, जो समस्त वर्णोंकी विशेषताका जानकार था। उसके हृदयमें ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति थी। वह सत्यप्रतिज्ञ तथा दानी भी था। गौतमने उसीके घर जाकर भिक्षाके लिये याचना की। दस्युने ब्राह्मणको रहनेके लिये घर देकर वर्षभर निर्वाह करने योग्य अन्नकी भिक्षाका भी प्रबन्ध कर दिया। उसने गौतमको नये वस्त्र भी दिये और उसकी सेवामें एक युवती दासी भी दे दी।

दस्युसे ये सारी वस्तुएँ पाकर गौतम मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ और उस सुन्दर गृहमें दासीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। वहाँ रहते हुए उसको अनेक वर्ष बीत गये और दस्युओंके समाजमें रहते-रहते वह भी दस्यु बन गया। उसने बाण चलाना सीख लिया। वह प्रतिदिन पक्षियोंको मारकर ले जाता तथा बड़े चावसे उनका मांस खाता।

कालान्तरमें एक सदाचारी तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण घूमता-फिरता उसी

गाँवमें आ पहुँचा। वह स्वाध्याय-परायण, पवित्र, विनयी, नियमके अनुकूल भोजन करनेवाला, ब्राह्मणभक्त तथा वेदोंका पारङ्गत विद्वान् था। वह शूद्रका अन्न नहीं खाता था, इसलिये दस्युओंसे भरे हुए उस गाँवमें ब्राह्मणका घर खोजने लगा। खोजते-खोजते वह गौतमके द्वारपर पहुँचा। उसी समय गौतम शिकारसे लौटा। उसके एक कंधेपर मरा हुआ हंस लटक रहा था और दूसरेपर धनुष। उसके कपड़ोंपर रक्तके छींटे पड़े हुए थे।

आगन्तुक ब्रह्मचारी ब्राह्मण गौतमके गाँवका ही निवासी था। इस वेशमें भी उसने गौतमको पहचान लिया। वह गौतमका मित्र भी था। गौतमको इस वेशमें देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। वह बोला—'मित्र गौतम! तू तो मध्यदेशका विख्यात एवं कुलीन ब्राह्मण था। यहाँ डाकू कैसे बन बैठा? हे ब्राह्मण! अपने पूर्वजोंको तो याद कर। वे कैसे वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे और तू उन्हींके वंशमें ऐसा कुलकलङ्क निकला। अब भी तो अपने-आपको पहचान। तू द्विज है। अतः द्विजोचित सत्त्व, शील, संयम और दयाभावको याद करके अपने इस वासस्थानको त्याग दे।'

गौतमने कुछ सोचकर आर्तस्वरमें उत्तर दिया—'द्विजश्रेष्ठ! मैं निर्धन हूँ और मैंने वेदोंका भी अध्ययन नहीं किया है। धन कमानेके लिये मैं इधर चला आया था। आज आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया। अब रातभर यहीं रहिये, कल प्रातःकाल हम दोनों साथ ही चलेंगे।'

वह ब्राह्मण दयालु था। गौतमके अनुरोधसे उसके यहाँ ठहर गया। किंतु उसने वहाँकी किसी वस्तुको हाथसे छुआ भी नहीं। गौतमके लाख अनुरोध करनेपर भी उसने उस घरके अन्नको ग्रहण नहीं किया और भूखा ही सो रहा। प्रातःकाल होते ही वह उठ पड़ा और गौतमका घर छोड़कर चला गया।

(२)

गौतमकी आँखें देरसे खुलीं। अपने बचपनके मित्रको गया हुआ देखकर वह भी घरसे बाहर निकल पड़ा और समुद्रकी ओर चल दिया। मार्गमें उसे व्यापारियोंका एक दल मिला और वह उसीके साथ हो लिया। एक दिन जब कि व्यापारियोंका दल किसी पर्वतकी गुफामें डेरा डाले हुए

था, एक मतवाले हाथीने उसपर आक्रमण कर दिया और उसने उस दलके अधिकांश मनुष्योंको यमराजके घर भेज दिया।

गौतम ब्राह्मण किसी प्रकारसे प्राण बचाकर भागा, किंतु घबराहटमें रास्ता भूल गया। वह वनमें भटकता हुआ उत्तर दिशाकी ओर बढ़ने लगा। चलते-चलते वह एक दिव्य एवं रमणीय वनमें जा पहुँचा, वहाँके सभी वृक्ष सुन्दर फूलोंसे सुशोभित थे। सभी ऋतुओंमें फूलने-फलनेवाली आम-वृक्षोंकी पंक्तियाँ उस वनकी शोभा बढ़ा रही थीं। यक्षों और किन्नरोंसे सेवित वह प्रदेश नन्दनवनके समान मनोरम जान पड़ता था। शाल, ताल, तमाल, काले अगुरु तथा श्रेष्ठ चन्दनके वृक्ष उस वनकी शोभाकी वृद्धि कर रहे थे। उन वृक्षोंपर नाना वर्णों और आकृतियोंवाले सुन्दर पक्षी कलरव कर रहे थे। पक्षियोंकी उस मधुर, मनोहर एवं रमणीय ध्वनिको सुनता हुआ गौतम ब्राह्मण आगे बढ़ता चला गया।

कुछ दूर जानेके बाद एक ऐसे स्थानपर, जो सुवर्णमयी बालुका-राशिसे व्याप्त, समतल, सुखद, विचित्र तथा स्वर्गीय भूमिके समान मनोहर था, गौतमने एक अत्यन्त शोभायमान वटका विशाल वृक्ष देखा, जो चारों ओर मण्डलाकार फैला हुआ था। अपनी असंख्य सुन्दर शाखाओंके कारण वह वृक्ष एक महान् छत्रके समान जान पड़ता था। उसकी जड़ चन्दन-मिश्रित जलसे सींची गयी थी। वह पवित्र, देवगृहके समान सुन्दर और पुष्पोंसे लदे हुए वृक्षोंसे घिरा हुआ था। उस वृक्षके पास आकर गौतम बड़े हर्षके साथ उसके नीचे बैठ गया। उसके वहाँ बैठते ही फूलोंको स्पर्श करके शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन चलने लगा। उस पवित्र वायुका स्पर्श पाकर गौतमको बड़ी शान्ति मिली। वह सुखका अनुभव करता हुआ वहीं लेट गया। उधर अंशुमाली भी अस्ताचलके पीछे जा छिपे।

(३)

गौतम लेट तो गया, परंतु थकावट और क्षुधाके कारण उसको नींद नहीं आ रही थी। अचानक आकाशमें एक विचित्र शब्द सुनायी देने लगा। पवनकी गति तीव्र हो उठी। वटवृक्षकी शाखाएँ हिलने लगीं—और गौतमने एक विशाल पक्षीको अपनी ओर आते हुए देखा। उसके अङ्गोंमें सूर्यकी

किरणोंके समान चमकीले आभूषण शोभा दे रहे थे। वह महर्षि कश्यपका पुत्र और ब्रह्माजीका प्रिय सखा था। उसका नाम था—'नाडीजङ्घ।' वह बगुलोंका राजा और महाबुद्धिमान् था। वह बड़ा विद्वान् और दिव्य तेजसे सम्पन्न था। पृथ्वीपर वह राजधर्माके नामसे विख्यात था। वह वटवृक्ष ही उसका निवासस्थान था।

गौतमको देखकर राजधर्मा बोला—'विप्रवर! आपका स्वागत है। यह मेरा घर है। आप यहाँ पधारे, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है! सूर्यदेव अस्ताचलमें चले गये हैं। संध्याकाल उपस्थित है। आप मेरे घर आये हुए प्रिय एवं उत्तम अतिथि हैं। रातमें मेरा आतिथ्य स्वीकार करके कल प्रात:काल यहाँसे जाइयेगा।'

यों कहकर राजधर्माने शास्त्रीय विधिके अनुसार गौतमका सत्कार किया। शालके फूलोंका आसन बनाकर उसे बैठनेके लिये दिया। फिर खिलाने-पिलानेके बाद उसकी थकावट मिटानेके लिये अपने पंखोंसे वह हवा करने लगा। तदनन्तर फूलोंसे अधिवासित कोमल पल्लवोंकी शय्या तैयार करके उसने गौतमको उसपर लिटा दिया।

जब गौतम आरामसे लेट गया, तब बातचीतमें कुशल कश्यप-कुमारने पूछा—'ब्रह्मन्! आप इधर किसलिये पधारे हैं?'

गौतमने कहा, 'महामते! मैं दरिद्र हूँ और धनके लिये समुद्रतटपर जानेकी इच्छा लेकर घरसे चला हूँ।'

यह सुनकर राजधर्माने प्रसन्न होकर कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपका काम यहीं हो जायगा। आप यहाँसे धन लेकर अपने घरको जाइयेगा। बृहस्पतिजीके मतके अनुसार अर्थकी सिद्धि चार प्रकारसे होती है—वंश-परम्परासे, प्रारब्धकी अनुकूलतासे, धनके लिये किये गये सकाम कर्मसे और मित्रके सहयोगसे।

'मैं आपका मित्र हो गया हूँ। अत: मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे आपको अर्थकी प्राप्ति हो जाय।'

जब प्रात:काल हुआ, तब राजधर्माने गौतमसे कहा—'सौम्य! इस मार्गसे जाइये। आपका कार्य सिद्ध होगा। यहाँसे तीन योजन जानेपर मेरुव्रज

नामक नगर मिलेगा। वहाँ महाबली राक्षसराज विरूपाक्ष रहते हैं, वे मेरे महान् मित्र हैं। मेरे कहनेसे वे आपको यथेष्ट धन देंगे और आपकी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण करेंगे, इसमें संदेह नहीं।'

बिना इधर-उधर देखे राजधर्माके बताये हुए मार्गपर गौतम तेजीसे आगे बढ़ने लगा।

(४)

मेरुव्रज नगरके चारों ओर पर्वतोंके टीले तथा पर्वतोंकी ही चहारदिवारी थी। उसका सदर फाटक भी एक पर्वत ही था। नगरकी रक्षाके लिये सब ओर शिलाकी बड़ी-बड़ी चट्टानें और यन्त्र लगे हुए थे।

जब गौतम नगर-द्वारपर पहुँचा, तब परम बुद्धिमान् राक्षसराज विरूपाक्षको सेवकोंद्वारा यह सूचना दी गयी कि उनके मित्रने अपने एक प्रिय अतिथिको उनके पास भेजा है।

सूचना पाते ही राक्षसराजने गौतमको तुरंत अपने महलके भीतर बुला लिया और उन्होंने उसका विधिवत् पूजन किया। तदुपरान्त विरूपाक्षने गौतमसे उसके गोत्र, शाखा और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक किये गये स्वाध्यायके विषयमें प्रश्न किया। परंतु जातिके सिवा वह और कुछ नहीं बता सका। फिर वीरूपाक्षने उससे उसका निवास-स्थान पूछा और उसकी पत्नीका गोत्र पूछा।

गौतमने उत्तर दिया—'राक्षसराज! मेरा जन्म तो हुआ है मध्यदेशमें, किंतु मैं एक भीलके घरमें रहता हूँ। मेरी स्त्री शूद्र जातिकी है और मुझसे पहले दूसरेकी पत्नी रह चुकी है।'

यह सुनकर राक्षसराज मन-ही-मन विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। अन्तमें उन्होंने यह निश्चय किया कि 'यह केवल जन्मसे ही ब्राह्मण होते हुए भी महात्मा राजधर्माका सुहृद् है। उन कश्यप-कुमारने ही इसे यहाँ मेरे पास भेजा है। अतः उनका प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। आज कार्तिकी पूर्णिमा है, आजके दिन सहस्रों श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे यहाँ भोजन करेंगे। उन्हींमें यह भी भोजन कर लेगा, उन्हींके साथ इसे भी धन दिया जायगा। आज पुण्य दिवस है, यह ब्राह्मण अतिथिरूपमें यहाँ आया है। अब इसके बाद क्या विचार करना है?'

राक्षसराज विरूपाक्षके यहाँ आषाढ़ और माघकी पूर्णिमाको सदा बहुत-से ब्राह्मण सत्कारपूर्वक उत्तम भोजन पाते थे। विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको, जब कि शरद्‌ऋतुकी समाप्ति होती है। वह ब्राह्मणोंको रत्नोंका दान करता था। उस दिन भी भोजनके पश्चात् ब्राह्मणोंके समक्ष बहुत-से सोने, चाँदी, मणि-मोती, बहुमूल्य हीरे, वैदूर्यमणि, रङ्कु मृगके चर्म तथा रत्नोंके कई ढेर लगाकर महाबली विरूपाक्षने उन ब्राह्मणोंसे कहा—'द्विजवरो! आपलोग अपनी इच्छा और उत्साहके अनुसार इन रत्नोंको उठा ले जायँ और जिन रत्नपात्रोंमें आप लोगोंने भोजन किया है, उनको भी लेते जायँ। विप्रगण! आज एक दिनके लिये आपलोगोंको राक्षसोंकी ओरसे कोई भय नहीं है; अतः सकुशल और सानन्द अपने अभीष्ट स्थानको शीघ्र ही चले जाइये, विलम्ब न कीजिये।'

यह सुनकर सब ब्राह्मण-समुदाय इच्छानुसार रत्न लेकर विदा हुआ। गौतम भी सुवर्णादिका भारी बोझ ढोता हुआ बड़ी कठिनाईसे वट-वृक्षके पास आ पहुँचा। मित्रवत्सल राजधर्माने गौतमको आया देखकर स्वागतपूर्वक उसका अभिनन्दन किया, अपने पंखोंको हिलाकर उसकी थकावट दूर की, फिर उसका पूजन किया तथा उसके लिये भोजनकी व्यवस्था की।

भोजन करके विश्राम कर लेनेपर गौतम इस प्रकार चिन्ता करने लगा—'अहो! मैंने लोभ और मोहसे प्रेरित होकर सुन्दर सुवर्णका यह महान् भार ले लिया है। अभी मुझे बहुत दूर जाना है। रास्तेमें खानेके लिये कुछ भी नहीं है, जिससे मेरे प्राणकी रक्षा हो सके। अब मैं कौन-सा उपाय करके अपने प्राणोंको धारण कर सकूँगा?' मार्गमें भोजनके लिये कुछ भी न देखकर उस कृतघ्नने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'यह बगुलोंका राजा राजधर्मा तो मेरे पास है ही। यह मांसका एक बहुत बड़ा ढेर है। इसीको मारकर ले लूँ और शीघ्रतापूर्वक यहाँसे चल दूँ।'

पक्षिराज राजधर्माने अपने मित्र गौतमकी रक्षाके लिये उससे थोड़ी दूरपर आग प्रज्वलित कर दी थी, जिससे रात्रिके अन्धकारमें कोई हिंस्र जन्तु न आवे। हवाका सहारा पाकर बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही थीं। बकराजको मित्रपर विश्वास था, इसलिये वे उसके पास ही सो गये थे। इधर वह दुष्टात्मा

कृतघ्न उनका वध करनेकी इच्छासे उठा और विश्वासपूर्वक सोये हुए राजधर्माको सामनेसे जलती हुई लकड़ी लेकर उसके द्वारा मार डाला। उन्हें मारकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उनके पंख और बाल नोचकर उन्हें आगमें पकाया और रत्नोंके बोझके साथ उन्हें भी लेकर वहाँसे बड़ी उतावलीसे चल पड़ा।

(५)

पक्षिराज राजधर्मा प्रतिदिन ब्रह्माजीके पास उनकी वन्दना करने जाया करते थे। लौटते समय संध्याको अपने मित्र विरूपाक्षके यहाँ भी अवश्य पधारते थे। उस दिन जब वे मेरुव्रजके राजप्रासादमें नहीं पहुँचे, तब राक्षसराजको बड़ी चिन्ता हुई। दूसरे दिन भी अपने मित्रको न देखकर उनका धैर्य टूट गया। उन्होंने अपने पुत्रको बुलाकर कहा—'बेटा! मैं पक्षियोंमें श्रेष्ठ राजधर्माको दो दिनोंसे नहीं देख रहा हूँ। आज दो संध्याएँ व्यतीत हो गयीं, किंतु वे मेरे घरपर नहीं पधारे; अतः मेरे मनमें संदेह उत्पन्न हो गया है। तुम मेरे मित्रका पता लगाओ। वह अधम ब्राह्मण गौतम स्वाध्यायरहित और ब्रह्मतेजसे शून्य था तथा हिंसक जान पड़ता था। उसीपर मेरा संदेह है। कहीं वह मेरे मित्रको मार न डाले। अपनी चेष्टाओंसे तो वह मुझे दुर्बुद्धि, दुराचारी एवं दयाहीन प्रतीत होता था। वह आकारसे भयानक और दुष्ट दस्युके समान जान पड़ता था। नीच गौतम यहाँसे लौटकर फिर उन्हींके निवास-स्थानपर गया था। इसलिये मेरे मनमें उद्वेग हो रहा है। बेटा! तुम शीघ्र यहाँसे राजधर्माके घर जाओ और पता लगाओ कि वे शुद्धात्मा पक्षिराज जीवित हैं कि नहीं। इस कार्यमें विलम्ब न करो।'

पिताकी आज्ञा पाकर राजकुमार तुरंत ही राक्षसोंके साथ उस वटवृक्षके पास गया। वहाँ राजधर्माके पंख और बालोंको देखकर वह रो पड़ा और उसने गौतमको शीघ्र पकड़नेकी चेष्टा की। कुछ ही दूर जानेपर राक्षसोंने गौतमको पकड़ लिया। उसके पास उन्हें राजधर्माका शव भी मिल गया।

गौतमको लेकर वे राक्षस शीघ्र ही मेरुव्रज लौटे। वहाँ उन्होंने राजाको राजधर्माका मृत शरीर दिखाया और पापाचारी कृतघ्न गौतमको भी सामने खड़ा कर दिया। अपने मित्रको इस दशामें देखकर मन्त्री और पुरोहितोंसहित राजा

विरूपाक्ष फूट-फूटकर रोने लगे। उनके महलमें महान् आर्तनाद गूँज उठा। सारे नगरमें क्षोभ छा गया। किसीका भी मन स्वस्थ न रहा। तब राजाने अपने पुत्रको आज्ञा दी, बेटा! इस पापीको मार डालो। ये समस्त राक्षस इसके मांसका यथेष्ट उपभोग करें।

राक्षसराजके इस प्रकार आदेश देनेपर भी भयानक राक्षसोंने गौतमको खानेकी इच्छा नहीं की। वे बोले—'प्रभो! इस नराधमका मांस दस्युओंको दे दिया जाय। आप हमें इसका पाप खानेके लिये न दें।'

विरूपाक्ष बोला—'राक्षसो! ऐसा ही सही, इस कृतघ्नको आज ही दस्युओंके हवाले कर दो।' आज्ञा पाकर शूल तथा पट्टिश धारण किये हुए राक्षसोंने पापी गौतमके टुकड़े-टुकड़े करके उसे दस्युओंको दे दिया। उन दस्युओंने भी उस पापाचारीका मांस खाना अस्वीकार कर दिया। मांसाहारी जीव-जन्तु भी कृतघ्नका मांस काममें नहीं लेते।

(६)

विरूपाक्षने बकराजके लिये एक चिता तैयार करायी, जिसे बहुत-से रत्नों, सुगन्धित चन्दनों तथा वस्त्रोंसे खूब सजाया गया। तत्पश्चात् बकराजके शवको उसके ऊपर रखकर प्रतापी राक्षसराजने उसमें आग लगायी और विधिपूर्वक मित्रका दाह-कर्म सम्पन्न किया।

उसी समय सुरभि देवी आकाशमें ठीक चिताके ऊपर आकर खड़ी हो गयीं। उनके मुखसे दूधमिश्रित फेन झरकर राजधर्माकी चितापर पड़ा। उससे बकराज तत्काल जीवित हो उठे और उड़कर अपने मित्र वीरूपाक्षके पास जा पहुँचे और उनसे प्रेम-विह्वल होकर मिले। उसी समय देवराज इन्द्र विरूपाक्षके नगरमें आये और दोनों मित्रोंकी उन्होंने बड़ी प्रशंसा की।

तदनन्तर राजधर्मा बकने इन्द्रको प्रणाम करके कहा—'सुरेश्वर! यदि आपकी मुझपर कृपा है तो मेरे प्रिय मित्र गौतमको भी जीवित कर दीजिये।'

इन्द्र और विरूपाक्ष दोनों राजधर्माके इस प्रस्तावसे चकित हो उठे। इन्द्रने कहा—'यह पापी कृतघ्न है। कृतघ्नको कैसे यश प्राप्त हो सकता है? उसे कैसे स्थान और सुखकी उपलब्धि हो सकती है? कृतघ्न विश्वासके योग्य नहीं होता। कृतघ्नके उद्धारके लिये शास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित नहीं बताया गया है।'

परंतु मित्रवत्सल राजधर्मा अपनी प्रार्थनापर अचल रहे। अन्तमें उनके अनुरोधको स्वीकार करके इन्द्रदेवने गौतम ब्राह्मणको भी अमृत छिड़ककर जीवित कर दिया। बकराजने बड़े प्रेमसे उसको हृदयसे लगा लिया। आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और राजधर्मापर फूलोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्व गा रहे थे—

प्रेमकी प्रतिमा जयति-जय, राजधर्मा जयति-जय॥
मित्र-वत्सलता-गुणालय, राजधर्मा जयति-जय॥

---

(५)

निर्वाण पथ

(लेखक—श्रीशिवनाथजी दुबे)

'साधन और अनुष्ठान तीर्थोंमें शीघ्र सफल होते हैं और उनका अक्षय फल होता है।' इसी विचारसे साधु बाहिय सुप्पारक तीर्थमें वास करने लगे थे।

बाहियका जीवन अत्यन्त सरल एवं सात्त्विक था। उनके मनमें किसी प्राणीके प्रति वैर-विरोध नहीं था। अपने साधनमें उनकी निष्ठा थी और उसमें वे सतत संलग्न थे। उनके तेजके साथ उनकी सम्मान-प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी।

समीपके ही नहीं, दूर-दूरके लोग उनके समीप आते और चरणोंमें सीस झुकाते। सभी उनकी पूजा और देवतुल्य आदर करते। चीवर, पिण्डपातके लिये शयनासन और दवा-बीरा उनको अनायास ही प्रचुर परिमाणमें प्राप्त हो जाते थे।

'संसारमें जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गारूढ़ हैं, उनमेंसे एक मैं भी हूँ।' बाहियके मनमें एक दिन विचार उठा।

'बाहिय मेरा अत्यन्त प्रिय है।' बाहियके कुलदेवताने सोचा कि 'यह सन्मार्गपर चलनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। इसे मुक्तिकी प्रत्येक क्षण कामना है अतएव इसे सावधान करना चाहिये।'

'बाहिय! तुम अर्हत् नहीं हो।' कृपापूर्वक कुलदेवताने बाहियके सम्मुख उपस्थित होकर कहा। 'अर्हत्-मार्गपर आरूढ़ भी नहीं हो। अर्हत्

या अर्हत्-मार्गारूढ़ होनेके पथका दर्शन भी तुम्हें नहीं हो सका है। अभिमान नहीं करना चाहिये। यह निर्वाण-पथका सबसे बड़ा बाधक है।'

'कृपामय!' बाहिय सहम गये। कुलदेवताकी ओर कृतज्ञताभरी दृष्टिसे देखते हुए उन्होंने अत्यन्त विनीत स्वरमें पूछा—'इस धरतीपर ऐसे कौन हैं, जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गारूढ़ हो चुके हैं। यह बता देनेकी दया कीजिये।'

'बाहिय!' कुलदेवताने उत्तर दिया। 'इसी आर्यधरापर श्रावस्ती नामकी एक पुण्य नगरी है। वहाँ इस समय भगवान् बुद्धदेव निवास कर रहे हैं। वे भगवान् तथागत ही स्वयं अर्हत् हो जगत्को अर्हत्-पद प्राप्त करनेका मार्ग-दर्शन करा रहे हैं। उनके परम पवित्र धर्मोपदेशसे जीव चिरकालिक भवबाधासे त्राण पा रहे हैं, मुक्त होते जा रहे हैं।'

कुलदेवता अदृश्य हो गये और बाहिय भगवान् बुद्धदेवके दर्शनार्थ सुप्पारक तीर्थसे चल पड़े। बाहिय जेतवन पहुँचे। ये सुप्पारक तीर्थसे यहाँतक अनवरत रूपसे चलते आये थे। यात्राके बीच इन्होंने केवल एक रात्रि विश्राम किया था। इनके नेत्रोंमें सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् बुद्धदेव जैसे समा गये थे। उन्हींके दर्शनार्थ उक्त पवित्र तीर्थको त्यागकर वे द्रुतगतिसे चल पड़े थे। जेतवनकी पावन भूमि और वहाँके सघन वृक्षोंको देखकर उन्हें अपूर्व शान्ति मिली। उन्हें लगा—'जैसे जेतवनकी तरु-लता-वल्लरियाँ ही नहीं, वहाँका प्रत्येक कण निर्वाण प्राप्त कर चुका है। वे श्रद्धा-विभोर हो गये। उस समय वहाँ कितने ही भिक्षु इधर-उधर टहल रहे थे।

'भन्ते!' एक भिक्षुके समीप जाकर उन्होंने विनीत वाणीमें पूछा। 'मैं अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान्के दर्शनार्थ सुप्पारक तीर्थसे चलकर आया हूँ। इस सयम वे कहाँ विहार कर रहे हैं?'

'बाहिय!' भिक्षुने उत्तर दिया। 'आप कुछ देर यहाँ विश्राम करें। भगवान् पिण्डपातके लिये इस समय गाँवमें गये हैं।'

'मैं भगवान्के दर्शन बिना एक क्षण भी विश्राम नहीं करना चाहता।' उन्होंने भिक्षुको उत्तर दिया। 'मैं अभी भगवान्के समीप जाऊँगा।' और वे भिक्षुके बताये गाँवकी ओर चल पड़े।

* * * *

बाहिय जेतवनसे दौड़ पड़े थे। उनके पैरोंमें जैसे पंख उग आये थे। तथागतके दर्शन बिना वे अधीर हो रहे थे। श्रावस्तीमें पहुँचकर उन्होंने देखा भगवान् भिक्षा-पात्र लिये एक साधारण परिवारकी देहरीपर खड़े हैं। भगवान्के भुवन-मोहन सौन्दर्य एवं उनकी आकृतिपर क्रीडा करती हुई दिव्य-ज्योतिको देखकर बाहिय चकित हो गये। अत्यन्त संयमी, अत्यन्त शान्त एवं शमथ-दमथको* प्राप्त प्रभुको देखकर बाहिय उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़ गये। अपने हाथोंमें उन्होंने भगवान्के पाद-पद्मोंको पकड़ लिया और नेत्रोंसे प्रवाहित अनवरत वारिधारासे वे बहुत देरतक उनका प्रक्षालन करते रहे।

'भन्ते!' कुछ देर बाद स्वस्थ होकर उन्होंने अत्यन्त श्रद्धापूरित नम्र वाणीमें निवेदन किया। 'भगवान् मुझे धर्मोपदेश करें, जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्ति उपलब्ध हो। भगवान् मुझे शीघ्र उपदेश दें।'

'बाहिय!' दूसरी बार भी भगवान्ने अत्यन्त शान्तिसे उत्तर दिया।

* * * *

'मैं भिक्षार्थ गाँवमें आया हूँ। गृहस्थ-परिवारकी देहरीपर खड़े हो भिक्षा-पात्रमें भिक्षा लेनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। धर्मोपदेशके लिये यह उचित समय नहीं है।'

'भन्ते!' बाहियने तीसरी बार पुनः अनुरोध किया। 'जीवनका ठिकाना नहीं। आम्रपल्लवकी नोकपर लटके सीकरका तो ठिकाना है, पर जीवनके सम्बन्धमें यह भी निश्चय नहीं। अगले क्षण भगवान् या मैं ही रह पाऊँगा या नहीं, कुछ भी निश्चित नहीं। अतएव जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्तिकी उपलब्धि हो, इस भवार्णवसे मैं सदाके लिये मुक्ति प्राप्त कर लूँ, भगवान् मुझे वैसा ही उपदेश दें।'

'अच्छा बाहिय!' भगवान् उसी अवस्थामें गृहस्थकी देहरीपर अपना रिक्तपात्र लिये अत्यन्त शान्त स्वरमें बोले। 'तुम्हें अभ्यास करना चाहिये, तुम्हें देखनेमें केवल देखना ही चाहिये, सुननेमें केवल सुनना ही चाहिये। सूँघने,

---

* लोकोत्तर प्रज्ञाविमुक्ति और चेतोविमुक्तिवाले उत्तम शमथ और दमथको जो प्राप्त कर चुके थे। (अट्ठकथा)

चखने और स्पर्श करनेमें केवल सूँघना, चखना और स्पर्श ही करना चाहिये। जाननेमें केवल जानना ही चाहिये। बाहिय! यदि तुमने ऐसा सीख लिया अर्थात् देखकर, सुनकर, सूँघकर, चखकर, स्पर्शकर और जानकर उसमें लिप्त नहीं हो सके, आसक्ति तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकी तो तुम्हारे दु:खोंका अन्त हो जायगा। जागतिक आसक्ति ही जगत्‌में आबद्ध करनेवाली एवं इससे त्राण पाना ही निर्वाण है।'

'भन्ते!' बाहिय पुनः भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने अनुभव किया, भगवान्‌के उपदेशमात्रसे उनका चित्त उपादान (प्रापञ्चिक जगत्‌की आसक्ति) से रहित तथा आस्रवोंसे मुक्त हो गया। वे बोले—'मैं आपका आजीवन ऋणी रहूँगा। भगवान्‌ने मुझे मुक्तिके मूलतत्त्वका साक्षात्कार करा दिया।'

मधुर स्मितके साथ भगवान् भिक्षाटनके लिये आगे बढ़े। बाहिय उनकी ओर ललक-भरे अपलक नेत्रोंसे तबतक देखते रहे, जबतक वे दृष्टिसे ओझल नहीं हो गये।

* * * *

'भन्ते!' एक भिक्षुकने दौड़कर भिक्षाटनसे नगरके बाहर लौटते हुए भगवान्‌से कहा। वह हाँफ रहा था। आगे वह बोल नहीं पाया। 'क्या बात है?' भगवान्‌ने प्रश्न किया।

'भन्ते!' कुछ स्थिर होकर उसने निवेदन किया। 'भगवान्‌के धर्मोपदेशके अनन्तर लौटते हुए बाहियको एक साँड़ने अपने सींगोंपर उठाकर जोरसे पटक दिया। बाहियका ऐहिक जीवन तत्काल समाप्त हो गया। उनका शव कुछ ही दूरपर पड़ा है।'

भगवान् द्रुतगतिसे बढ़े। उन्होंने बाहियके शवको देखकर एकत्र भिक्षुओंसे कहा—'भिक्षुओ! यह तुम्हारा एक सब्रह्मचारी (गुरुभाई) था। इसकी निर्जीव देहकी अर्थी बनाकर अग्निमें जला दो और इसके भस्मोंपर स्तूप निर्मित कर दो।'

'जैसी आज्ञा!' भिक्षुओंने उत्तर दिया और वे बाहियके शवके अन्तिम-संस्कारमें लग गये।

* * * *

'भन्ते!' भगवान्‌के चरणोंके समीप बैठकर भिक्षुओंमेंसे एकने विनम्र निवेदन किया। 'भगवान्‌के आदेशानुसार बाहियकी निर्जीव देह प्रज्वलित अग्निमें भस्म कर दी गयी। उनके भस्मोंपर स्तूप उठवा दिया गया।'

कुछ देर रुककर उस भिक्षुने पुनः निवेदन किया—'भगवान्‌से हमलोग जानना चाहते हैं कि बाहियकी क्या गति होगी?'

अत्यन्त शान्त एवं गम्भीर वाणीमें उन्होंने धीरे-धीरे उत्तर दिया—'भिक्षुओं! जब क्षीणाश्रव भिक्षु आत्म-साक्षात्कार कर लेता है, तब वह रूप-अरूप तथा सुख-दुःखसे छूट जाता है। बाहियने मेरे बताये धर्मोपदेशको ठीकसे ग्रहण कर लिया था, वह निर्वाणके मार्गपर आरूढ़ हो गया था।'

भिक्षुओंकी आकृतिपर हर्ष नृत्य कर उठा। भगवान् मौन हो गये। शीतल-मन्द समीर भगवान्‌के चरणोंको स्पर्शकर प्रसन्नतासे नृत्य करने लगा।

---

(६)

श्रीरामजनीजी

(लेखक—श्रीशिवनाथजी दुबे)

संत कृष्णदासके पैर क्षणभरके लिये रुक गये। तबलेकी गमगमाहट, पायलकी रुनझुन और सारंगीके मधुर स्वरके साथ गणिका रामजनीकी मधुर स्वर-लहरी थिरक रही थी।

कितना मधुर स्वर है इस वेश्या-पुत्रीका। वाणी जैसे अमृतमें डुबोयी गयी है। 'यदि यह हमारे गोवर्धनधरके सामने गाती तो इसका जीवन, इसका जन्म सफल ....' संतने तुरंत सोच लिया। वे भगवान्‌के लिये वस्त्राभूषण लेने गोवर्धनसे दिल्ली आये थे। गलीमें गणिकाकी मधुर तानपर मुग्ध होकर उन्होंने यह निर्णय कर लिया।

'मेरे ठाकुरके पास चल सकोगी?' सीढ़ीसे उतरते ही कृष्णदासने लावण्यमयी गणिकासे कहा। 'वे अनन्त सम्पत्ति-सम्पन्न और उदार हैं। तुम्हारी दीनता सदाके लिये मिट जायेगी।'

'हाँ, हाँ, अवश्य चलूँगी'—धनकी लोभिन गणिकाने उत्तर दिया।

'आपकी आज्ञाके लिये दासीके तन, मन और प्राण—सभी प्रस्तुत हैं।'

* * * *

रामजनीने सोचा था, किसी धनवान् जमींदारके यहाँ चलना है वस्त्राभूषणसे पूर्णतया सुसज्जित थी। सौन्दर्य उसका निखर गया था, उसके अङ्ग-अङ्गमें आकर्षण था, पुरुषको उन्मत्त बना देनेकी क्षमता थी। भजन रटाते बाबाजी उसे गोवर्धनके मन्दिरमें ले आये। वह चकित थी, पर चुप थी; रुपया तो उसे पहले ही मिल चुका था।

'भजन गाओ, देवि!' श्रीकृष्णदासने अत्यन्त प्रेमसे कहते हुए भगवान्‌का पट खोल दिया।

गणिका रामजनीने श्रीभगवान्‌को देखा—केवल एक बार देखा, न जाने कौन-सी सम्मोहक शक्ति थी उस प्रतिमामें! गणिका छक गयी, बिक गयी। उसका मन अपने वशमें नहीं रह पाया। टकटकी लगाये वह गोवर्धनधरकी ओर देखती रही, बहुत देरतक देखती रही।

'प्रार्थना सुनाओ बेटी!' संतने गणिकाको सचेत किया! तब उसने समझा—मैं गानेके लिये यहाँ आयी हूँ। कृष्णदासजीने उसे एक पद बनाकर मुखस्थ करा दिया था। उसे ही वह गानेका उपक्रम करने लगी।

तबलेपर थाप पड़ी, वह गमक उठा। सारंगी काँप गयी। मञ्जीर झनझना उठा। मधुर वाद्योंका एक समाँ बँध गया। रामजनीने गाना आरम्भ किया।

मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यौ।

स्वरमें अनुपम मधुरता थी। श्रोता झूम उठे। श्रीकृष्णदासकी आँखें भर आयीं। रामजनीका मन तो सचमुच गिरिधर-छविमें अटक गया था। उसने इस पंक्तिको कई बार दुहराया। प्रत्येक बार उसमें नूतन रस छलकता दीखता था। गणिकाका तो प्राण स्वरोंमें तड़पता हुआ बोल रहा था। गीत आगे बढ़ा—

ललित त्रिभंग चाल पै चलि कै, चिबुक चारु गड़ि ठटक्यौ॥ १॥

रामजनी श्यामसुन्दरके रंगमें रँगकर श्यामसुन्दर बन गयी थी। अपनी देहका ध्यान उसे नहीं था। त्रिभङ्गी चाल चलकर चिबुक पकड़कर ठिठकनेका अत्यन्त सुन्दर चित्रण नृत्यमें उसने किया। दर्शक मुग्ध थे।

सजल स्याम घन बरन लीन है, फिरि चित अनत न भटक्यौ।

जलसे लदे बादलका आकार बनाती हुई वह घनश्यामकी भुवन-मोहिनी मूर्तिकी ओर देखने लगी। आँखें उसकी भर आयीं। बड़े साहससे उसने पदके अन्तिम अंशकी पूर्ति की—

कृष्णदास किए प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यौ॥ २॥

रामजनीका पार्थिव शरीर धम्मसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी साँस बंद हो गयी थी। भक्तगण उसके सौभाग्यकी प्रशंसा कर रहे थे।

साधु-संत और आचार-विचार रखनेवाले सब लोगोंने भगवान्‌के श्रीनामका कीर्तन करते हुए उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की।

रामजनी धन्य थी। उसके सौभाग्यपर देवगणोंको भी ईर्ष्या होती थी।

---

(७)

आकर्षण

(लेखक—श्रीशिवनाथजी दुबे)

'भगवान् बुद्धदेवकी जय।'

गगनमण्डल गूँज उठा 'तथागत'के जय-निनादसे। कितने दिनों बाद कपिलवस्तुके प्राणप्रिय नरेश शुद्धोदनके पुत्र सिद्धार्थ राजधानीमें पधार रहे हैं। समस्त प्रजा हर्षोत्फुल्ल है। सिद्धार्थ आज बालक सिद्धार्थ नहीं हैं। उन्हें जगत्‌का मिथ्यात्व-बोध हो गया है। ज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया है, मोक्ष उनके करतलगत है और अखण्ड शान्ति उनका साथ नहीं छोड़ती। पृथ्वीपर सुख-शान्ति वितरित करते हुए एक बार यहाँ पधारनेका उन्होंने कष्ट स्वीकार किया है। नगरकी प्रत्येक देहरीपर आम्रपल्लवके तोरण बँधे हैं। विविध सुगन्धित पुष्पोंकी मालाएँ टँगी हैं। राजमार्ग और अन्य समस्त पथ प्रशस्त हो गये हैं। उनपर जल-सिञ्चन हो गया है और सर्वत्र ही बिखरी पुष्पराशि दीख रही है। भगवान् अपने सुकोमल चरण धीरे-धीरे रखते हुए आ रहे थे।

उनके पीछे विशाल जन-समूह लहरा रहा था। मार्गके दोनों ओर छतोंपर स्त्रियाँ मङ्गलगानके द्वारा उनकी स्तुति करती हुई उनपर पुष्प-वृष्टि कर रही थीं और अपलक नेत्रोंसे उनके दर्शन कर रही थीं। आज

कपिलवस्तुकी प्रजा धन्य हो गयी थी, आज उसका जीवन सफल हो गया था, वह कृतार्थ हो गयी थी, जो अपने भगवान्‌की दिव्य मूर्तिके प्रत्यक्ष दर्शन कर रही थी। आज कपिलवस्तुके समस्त प्राणी अपनी चिन्ता, शोक और विषाद सदाके लिये भूल गये हैं। उनके सामने आनन्दको मुक्तहस्त वितरित करनेवाले देवता जो आ गये हैं।

'मैं धन्य हो गया।' सिद्धार्थके वैमात्रेय भ्राता नन्द नंगे पैरों दौड़े आये थे और तथागतके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़ गये। उनके नेत्रोंसे बहती अनवरत वारिधाराएँ बुद्धदेवके युगल पाद-पद्मोंका प्रक्षालन करने लगीं। उनका हृदय गद्गद और वाणी अवरुद्ध हो गयी थी। इच्छा होनेपर भी वे बोल नहीं पा रहे थे।

'प्रिय नन्द!' बुद्धदेवने नन्दको उठाकर अङ्कमें कस लिया। उनकी विमाता मायादेवी और यह उनका भाई उन्हें कितना प्रिय थे, वे कैसे बताते। पर आज तो जगतीका प्रत्येक जीव उनके लिये प्राणाधिक प्रिय हो गया था। वे नन्दके सिरपर हाथ फेर रहे थे। नन्दके नेत्र अब भी अश्रु-वर्षा कर रहे थे। बड़ी कठिनाईसे नन्दने कहा—'आज कपिलवस्तु और उसकी प्रजा धन्य हो गयी। आप-जैसे भाईको पाकर मेरा जीवन परम पावन बन जाय, इसमें तो क्या कहना, आपके अवतरित होनेसे समस्त मेदिनी पुनीत हो गयी। जगत्‌के पाप-ताप दूर भाग गये। पृथ्वीका भार हल्का हो गया। आज वह पुलकित............।'

नन्द आगे नहीं बोल सके। एक अत्यन्त सुमधुर स्मितके साथ बुद्धदेवने उन्हें पुनः अपने अङ्कमें कस लिया और उधर प्रेमोन्मत्त असंख्य जन-कण्ठोंने उच्च घोष किया 'भगवान् बुद्धदेवकी जय!'

'भगवान् बुद्धदेवकी जय।' नन्दके मुखसे स्वतः निकल गया। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहते ही जा रहे थे।

* * * *

'बुद्धं शरणं गच्छामि।'
'धम्मं शरणं गच्छामि।'
'संघं शरणं गच्छामि।'

नन्द बार-बार उच्चारण करते। बोधिसत्त्वके चरणोंका ध्यान एवं उनके उपदेशका वे प्रतिक्षण मनन करते। जगत्‌की प्रत्येक प्रिय और मनोरम वस्तुका विछोह होगा, वे छूटेंगी ही, उनका नाश निश्चित है—बोधिसत्त्वकी इस वाणीने उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न कर दिया था। मुक्ति-प्राप्तिके लिये वे प्राणपणसे प्रयत्न कर रहे थे। उनकी प्रत्येक क्रिया मुक्तिके लिये ही हो रही थी।

किंतु जिस प्रकार सघन जलद-मालाके बीच सौदामिनी कौंधकर क्षणार्धके लिये घनान्धकारको समाप्त कर देती है, सर्वत्र प्रकाश छा जाता है, उसी प्रकार नन्दके मस्तिष्कमें एक ऐसी स्मृति उदित हो जाती, जिसके कारण वे क्षणभरके लिये सहम जाते, उनका सारा प्रयत्न जैसे शिथिल हो जाता। मुक्तिके सम्पूर्ण प्रयत्नपर जैसे पानी फिर जाता।

'प्रिय, शीघ्र लौटना!' नागिन-जैसे अपने कृष्ण केशोंको फैलाये चन्द्रमुखी शाक्यायनी जनपद-कल्याणीने अत्यन्त करुण स्वरमें कहा था। उसकी चम्पकलता-सी कोमल काया काँप रही थी और कमलसरीखे नेत्रोंसे आँसूकी गोल-गोल बड़ी-बड़ी बूँदें लुढ़क रही थीं। नन्दने अपनी प्राणप्रियाके इस रूपको तिरछे नेत्रोंसे एक बार—केवल एक ही बार देखा था, पर उसकी वह करुणमूर्ति बरबस—न चाहनेपर भी—नन्दके हृदय-मन्दिरमें प्रवेश कर गयी थी, चुपके-से नेत्रोंमें बस गयी थी।

पर नन्दने बोधिसत्त्वके तेजस्वी रूपका दर्शन कर लिया था, उनका अमृतमय उपदेश सुन लिया था। संसारकी असारता तथागतके शब्दोंमें अब भी उनके कानोंमें झंकृत हो रही थी। फिर वे किस प्रकार पीछे पग रखते। वे बढ़े, बढ़ते गये तथागतके चरणोंमें। जीवमात्रको मुक्तिका मार्ग बतानेके लिये जब भगवान्‌ने धरित्रीपर पग रक्खा था, तब नन्दको वे क्यों नहीं दीक्षित करते?

नन्द विशुद्ध अन्तर्मनसे ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे थे। किंतु प्रातः-सायं-मध्याह्न या नीरव निशीथमें जब भी वे एकाकी 'बुद्धं शरणं गच्छामि ....' की आवृत्ति करते होते अचानक शाक्यायनी जनपद-कल्याणीकी करुण मूर्ति नेत्रोंके सामने आ जाती। उसकी बड़ी-बड़ी आँसूकी बूँदोंकी

स्मृतिसे वे सिहर उठते और उसी समय उन्हें कोकिल-कण्ठका अनुनय सुनायी देता, 'प्रिय, शीघ्र लौटना!'

नन्द आकुल हो जाते। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। सुविस्तृत मार्गपर वे अपने पग दृढ़तासे बढ़ाते जायँगे, इसकी आशा उनके मनसे तिरोहित होती चली जा रही थी।

'आवुस,' अन्ततः अधीर नन्दने अपने मनकी बात एक भिक्षु पर प्रकट कर दी। 'मेरा साधन शिथिल होता जा रहा है। ब्रह्मचर्यका पालन मुझसे सम्भव नहीं। मैं इस व्रतको त्यागकर पुनः गार्हस्थ्य-जीवनमें लौट आनेका विचार कर रहा हूँ।'

'सत्य कहते हो नन्द?' भिक्षुने आश्चर्य-चकित हो पूछा और वह नन्दकी ओर देखने लगा।

'आवुस!' नन्दने अवनत-वदन उत्तर दे दिया। 'मैं सत्य कहता हूँ। पत्नीकी स्मृति मुझे विकल कर रही है।'

* * * *

नन्द चकित थे। उन्होंने ऐसे-ऐसे विस्तृत और रमणीय प्रासाद कभी नहीं देखे थे। मणिमय भित्तियाँ और स्वर्णके दीप्तिमय ऊँचे कलश देखकर मन लुब्ध हो जाता था। विस्तीर्ण पथ, उपवन और जिस ओर भी दृष्टि जाती वहीं रुक जाती। नन्दने पूछा—'भन्ते! हम कहाँ हैं?'

'यह देवलोक है।' तथागतने उत्तर दिया और आगे बढ़ गये।

'भन्ते! ऐसा रूप-लावण्य तो मैंने कभी देखा नहीं।' नन्दके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। अपने नेत्रोंसे उन्होंने जो कभी नहीं देखा, जो कभी सुननेको भी नहीं मिला और मनने जिसकी कल्पनातक नहीं की, वह सब यहाँ दीख रहा था। वे परम विस्मित थे। शाक्यायनी जनपद-कल्याणी तथा पृथ्वीकी सर्वोत्तम सुन्दरी तो इन लावण्यवतियोंके सम्मुख पुच्छहीना कुत्सिता कानी कुतियासे भी अत्यधिक कुरुपा और उपेक्षणीय है। 'ये देवियाँ कौन हैं?' पूछ लिया उन्होंने।

'ये अप्सराएँ हैं। देवाधिपति शक्रकी सेवामें उपस्थित हुई हैं ये।' बोधिसत्वने मुसकराते हुए कहा। 'एक बात पूछूँ, बताओगे?'

'अवश्य बताऊँगा।' नन्दकी दृष्टि अप्सराओंकी ओर थी। 'आपसे क्या गोप्य है।'

'भूलोककी सुन्दरियाँ इनकी तुलनामें ....।'

'कुछ भी नहीं।' तथागतका प्रश्न पूरा हुए बिना ही नन्दने उत्तर दे दिया। 'महाकुरूपा हैं वे इनके सामने।'

'जनपद-कल्याणी ?' तथागतने पुनः पूछा।

'वह भी।' नन्दने बल देकर कहा। 'इस सौन्दर्यकी तुलना जगत्में कहाँ प्रभो!'

'मैं इन पाँच सौ रूपसियोंको तुम्हें दिला दूँगा।' तथागतने कहा। 'मेरे वचनका विश्वास कर तुम ब्रह्मचर्यका पालन करो।'

'भन्ते! मैं अवश्य ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करूँगा।' अत्यन्त उत्साहसे नन्दने उत्तर दिया। 'आपके वचनका विश्वास धरातलका कौन प्राणी नहीं करेगा ?'

नन्दने देखा, वे भगवान्के साथ पुनः जेतवनमें आ गये हैं। देवलोक अलक्षित हो गया।

*　　*　　*　　*

पाँच सौ रूपसियोंके लोभसे नन्द ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे हैं। तीक्ष्ण शूल-जैसी कटूक्तियोंकी नन्द चिन्ता नहीं करते। उन्हें तो दृढ़-विश्वास था भगवान्के वचनका। निश्चय ही पाँच सौ अलौकिक लावण्यवतियाँ सुलभ हो जायँगी। वे दत्तचित्त हो ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते जा रहे थे।

विशुद्ध निष्ठा और आत्मसंयमसे वे व्रतमें लगे रहे। कुछ ही समय बाद उन्हें वह प्राप्त हो गया, जिसके लिये प्रव्रजित हुआ जाता है। उनका व्रत सफल हो गया। ममताका बन्धन छिन्न हो गया। मोहका कुहरा नष्ट हो गया। 'इसके बाद कुछ करना शेष नहीं है ....' इसे उन्होंने जान लिया। तत्त्वका उन्होंने साक्षात्कार कर लिया।

*　　*　　*　　*

प्रत्यूष-वेला। शीतल पवन मन्थरगतिसे बह रहा था। सर्वत्र शान्तिका एकाधिप साम्राज्य था। भगवान् शान्त बैठे थे।

'भन्ते!' नन्दने अभिवादन करनेके पश्चात् कहा। 'जिन पाँच सौ

अप्सराओंको मुझे दिलानेका आपने वचन दिया था, अब मुझे उनकी आवश्यकता नहीं रह गयी।'

'नन्द!' बुद्धदेवने वैसी ही शान्तिसे कहा। 'मुझे विदित हो गया है कि नन्द यहींपर चेतो-विमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्तिको जान उनका साक्षात्कार कर चुका है। तुम्हें प्रापञ्चिक जगत्से मुक्ति मिलते ही मैं अपने वचन-पालनके दायित्वसे मुक्त हो गया।'

कुछ रुककर भगवान्ने पुनः धीरे-धीरे कहा—'काम जिन्हें स्पर्श नहीं कर पाता, ममता-पाशमें जो बँध नहीं पाता और सुख-दुःखसे जो प्रभावित नहीं होता, वही सच्चा भिक्षु है।'

'भन्ते! जगत्का आकर्षण मेरे मनमें सर्वथा समाप्त हो गया।' सीस झुकाकर आयुष्मान् नन्दने निवेदन किया। 'अब तो मेरे मनमें तीव्रतम आकर्षण है केवल आपके पद-पद्मोंमें।'

तथागत मौन तथा शान्त थे। उनकी आकृतिसे तेज छिटक रहा था। नन्द मन-ही-मन आवृत्ति कर रहे थे—

बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं .... ॥

----

(८)
यमके द्वारपर
(लेखक—श्रीशिवनाथजी दुबे)

'न देने योग्य गौके दानसे दाताका उलटे अमङ्गल होता है' इस विचारसे सात्त्विक-बुद्धि-सम्पन्न कुमार नचिकेता अधीर हो उठे। उनके पिता वाजश्रवस (वाजश्रवाके पुत्र) उद्दालकने विश्वजित् नामक महान् यज्ञके अनुष्ठानमें अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी, किंतु ऋषि-ऋत्विज् और सदस्योंकी दक्षिणामें अच्छी-बुरी सभी गौएँ दी जा रही थीं। पिताजीके मङ्गलकी रक्षाके लिये अपने अनिष्टकी आशङ्का होते हुए भी उन्होंने विनयपूर्वक कहा—'पिताजी! मैं भी आपका धन हूँ, मुझे किसे दे रहे हैं?

'तत कस्मै मां दास्यसीति।'

उद्दालकने कोई उत्तर नहीं दिया। नचिकेताने पुनः वही प्रश्न किया, पर उद्दालक टाल गये।

'पिताजी! मुझे किसे दे रहे हैं?' तीसरी बार पूछनेपर उद्दालकको क्रोध आ गया। चिढ़कर उन्होंने कहा—'तुम्हें देता हूँ मृत्युको'—'मृत्यवे त्वां ददामिति।'

नचिकेता विचलित नहीं हुए। परिणामके लिये वे पहलेसे ही प्रस्तुत थे। उन्होंने हाथ जोड़कर पितासे कहा—'पिताजी! शरीर नश्वर है, पर सदाचरण सर्वोपरि है। आप अपने वचनकी रक्षाके लिये यमसदन जानेकी मुझे आज्ञा दें।'

ऋषि सहम गये, पर पुत्रकी सत्यपरायणता देखकर उसे यमपुरी जानेकी आज्ञा उन्होंने दे दी। नचिकेताने पिताके चरणोंमें सभक्ति प्रणाम किया और यमराजकी पुरीके लिये वे प्रस्थित हो गये।

यमराज काँप गये। अतिथि ब्राह्मणके सत्कार न करनेके कुपरिणामसे वे पूर्णतया परिचित थे और ये तो अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषिकुमार थे, जो उनकी अनुपस्थितिमें उनके द्वारपर बिना अन्न-जल ग्रहण किये तीन रात बिता चुके थे। यम जलपूरित स्वर्ण-कलश अपने ही हाथों लिये दौड़े। उन्होंने नचिकेताको सम्मानपूर्वक पाद्यार्घ्य देकर अत्यन्त विनयसे कहा—'आदरणीय ब्राह्मण! पूज्य अतिथि होकर भी आपने मेरे द्वारपर तीन रात्रियाँ उपवासमें बिता दीं। यह मेरा अपराध है। आप प्रत्येक रात्रिके लिये एक-एक वर मुझसे माँग लें।'

'मृत्यो! मेरे पिता मेरे प्रति शान्त-संकल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जायँ तथा जब मैं आपके यहाँसे लौटकर घर जाऊँ, तब वे मुझे पहचानकर प्रेमपूर्वक बातचीत करें।' पितृभक्त बालकने प्रथम वर माँगा। 'तथास्तु।' यमराजने कहा।

'मृत्यो! स्वर्गके साधनभूत अग्निको आप भलीभाँति जानते हैं। उसे ही जानकर लोग स्वर्गमें पहुँचकर अमृतत्व (देवत्व) को प्राप्त होते हैं। मैं उसे जानना चाहता हूँ—यही मेरी द्वितीय वर-याचना है।'

'यह अग्नि अनन्त (स्वर्ग) लोककी प्राप्तिका साधन है।' यमराज नचिकेताको अल्पायु, तीक्ष्णबुद्धि तथा वास्तविक जिज्ञासुके रूपमें पाकर प्रसन्न थे। उन्होंने कहा—'यही विराट्रूपसे जगत्की प्रतिष्ठाका मूल कारण है। इसे आप विद्वानोंकी बुद्धिरूप गुहामें स्थित समझिये।'

उस अग्निके लिये जैसी और जितनी ईंटें चाहिये, वे जिस प्रकार रक्खी जानी चाहिये तथा यज्ञस्थली-निर्माणके लिये आवश्यक सामग्रियों और अग्निचयन करनेकी विधि बतलाते हुए अत्यन्त संतुष्ट होकर यमने द्वितीय वरके रूपमें कहा—'मैंने जिस अग्निकी बात आपसे कही है, वह आपके ही नामसे प्रसिद्ध होगी और आप इस विचित्र रत्नोंवाली शब्दवती मालाको भी ग्रहण कीजिये।'

'तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व'—'हे नचिकेता! अब तीसरा वर माँगिये' अग्निको स्वर्गका साधन अच्छी प्रकार बतलाकर यमने कहा।

'आप मृत्युके देवता हैं।' श्रद्धा-समन्वित नचिकेताने कहा। 'आत्माका प्रत्यक्ष या अनुमानसे निर्णय नहीं हो पाता। अतः मैं आपसे वही आत्मतत्त्व जानना चाहता हूँ। कृपापूर्वक बतला दीजिये।'

यम झिझके। आत्मविद्या साधारण विद्या नहीं। उन्होंने नचिकेताको उसके ज्ञानकी दुरूहता बतलायी, पर वे उनको अपने निश्चयसे नहीं डिगा सके। यमने भुवनमोहन अस्त्रका उपयोग किया—सुरदुर्लभ सुन्दरियों और दीर्घस्थायिनी भोग-सामग्रियोंका प्रलोभन दिया; पर ऋषिकुमार अपने तत्त्व-सम्बन्धी गूढ़ वरसे विचलित नहीं हो सके।

'आप बड़े भाग्यवान् हैं।' यमने नचिकेताके वैराग्यकी प्रशंसा की और वित्तमयी संसारगतिकी निन्दा करते हुए बतलाया कि 'विवेक-वैराग्यसम्पन्न पुरुष ही ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिके अधिकारी हैं।' श्रेय-प्रेय और विद्या-अविद्याके विपरीत स्वरूपका पूरा वर्णन करते हुए यमने कहा—'आप श्रेय चाहते हैं तथा विद्याके अधिकारी हैं।'

'हे भगवन्! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो सब प्रकारके व्यवहार-विषयोंसे अतीत जिस परब्रह्मको आप देखते हैं, उसे मुझे अवश्य बतलानेकी कृपा कीजिये।'

'आत्मा चेतन है। वह न जन्मता है, न मरता है, न वह किसीसे उत्पन्न हुआ है, न स्वतः ही कुछ बना हुआ है।' नचिकेताकी जिज्ञासा देखकर यम अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। उन्होंने आत्माके स्वरूपको विस्तारपूर्वक बतलाया—'यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, प्राचीन होकर भी नवीन है, शरीरके नाश होनेपर भी बना रहता है। वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और महान्‌से भी महान् है। वह समस्त अनित्य शरीरोंमें रहते हुए भी शरीररहित है, समस्त अस्थिर पदार्थोंमें व्याप्त रहते हुए भी सदा स्थिर है। वह कण-कणमें व्याप्त है। सारा सृष्टि-क्रम उसीके आदेशसे चलता है। अग्नि उसीके भयसे तपता है तथा इन्द्र, वायु और पञ्चम मृत्यु उसीके भयसे दौड़ते हैं। जो पुरुष कालके गालमें जानेसे पूर्व उसे जान लेते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं—शोकादि क्लेशोंको पार कर परमानन्दको प्राप्त कर लेते हैं।'

यमने कहा—'वह न तो वेदोंके प्रवचनसे प्राप्त होता है, न विशाल बुद्धिसे मिलता है और न केवल जन्मभर शास्त्रोंके श्रवणसे ही मिलता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।*

'वह उन्हींको प्राप्त होता है, जिनकी वासनाएँ शान्त हो चुकी हैं, कामनाएँ मिट गयी हैं और जिनके पवित्र अन्तःकरणको मलिनताकी छाया भी स्पर्श नहीं कर पाती तथा जो उसे पानेके लिये अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं।'

कुछ रुककर मधुर स्मितके साथ यमने कहा—'सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूपको अभिव्यक्त कर देता है'—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम्॥

आत्मज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद उद्दालक-पुत्र कुमार नचिकेता लौटे तो उन्होंने देखा कि वृद्ध तपस्वियोंका समुदाय भी उनके स्वागतार्थ खड़ा है।

---

*नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
(गीता ११।५३)

पद

(१)

(राग सोरठा—कहरवा)

मन रे! माधव सौं करि प्रीत।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू, छाड़ि सबै बिपरीत॥
भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बँधावै आप॥
सुनि परिमिति पिय प्रेम की, चातक चितवन पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, अनत न जाँचै बारि॥
देखौ करनी कमल की, कीन्हौ रबि सौं हेत।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यौ, सूख्यौ सरहि समेत॥
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतंग।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जर्‌यौ, (पै) चित न भयौ रस भंग॥
मीन बियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात॥
प्रीति परेवा की गनौ, चित लै चढ़त अकास।
तहँ चढ़ि तीय जु देखई, परत छाँड़ि उर स्वाँस॥
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, स्रवननि राच्यौ राग।
धरि न सकत पग पछमनौ, सर सनमुख उर लाग॥
देखि जरनि जड़! नारि की, जरत प्रेत के संग।
चिता न चित फीकौ भयौ, रची जु पिय के रंग॥
लोक-बेद बरजत सबै, नैननि देखत त्रास।
चोर न जिय चोरी तजै, सरबस सहै बिनास॥
सब रस को रस प्रेम है, बिषई खेलै सार।
तन-मन-धन जोबन खसै, तऊ न मानै हार॥
तैं जु रतन पायौ भलौ, जान्यौ साधु-समाज।
प्रेम-कथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज॥

सदा सँघाती आपनौ, जिय कौ जीवन-प्रान।
सु तैं बिसार्‌यौ सहजहीं, हरि ईस्वर भगवान्॥
बेद पुरान सुमृति सबै, सुर-नर सेवत जाहि।
महामूढ़ अग्यान-मति, क्यौं न सँभारत ताहि॥
खग-मृग, मीन-पतंग लौं, मैं सोधे सब ठौर।
जल-थल जीव जिते-तिते, कहौं कहाँ लगि और॥
प्रभु पूरन पावन सखा, प्राननहु कौ नाथ।
परम दयाल कृपालु है, जीवन जाकें हाथ॥
गर्भबास अति त्रास में, जहाँ न एकौ अंग।
सुनु सठ! तेरौ प्रानपति, तहउँ न छाड़्यौ संग॥
दिना-रात पोषत रह्यौ, ज्यौं तंबोली पान।
दुख तैं तोही काढ़ि कै, लै दीनौ पयपान॥
जिन जड़ तैं चेतन कियौ, रचि गुन-तत्त्व-बिधान।
चरन-चिकुर, कर-नख दिए, नयन-नासिका-कान॥
असन-बसन बहुबिधि दिए, औसर-औसर आनि।
मात-पिता-भैया मिले, नइ रुचि, नइ पहिचानि॥
सजन-कुटुँब-परिजन बढ़े, सुत-दारा, धन-धाम।
महा मूढ़ बिजई भयौ, चित आकरष्यौ काम॥
खान-पान-परिधान में, जोबन गयौ सब बीति।
ज्यौं बिट पर-तिय सँग बस्यौ, भोर भएँ भइ भीति॥
जैसैं सुखहीं तन बढ़्यौ, तैसैं तनहिं अनंग।
धूम बढ़्यौ, लोचन खस्यौ, सखा न सूझ्यौ संग॥
जम जान्यौ, सब जग सुन्यौ, बाढ़्यौ अजस अपार।
बीच न काहू तब कियौ, (जब) दूतनि दीन्ही मार॥
कह जानौं कहँवाँ मुऔ, ऐसे कुमति कुमीच।
हरि सौं हेतु बिसारि कै, सुख चाहत है नीच॥
जौ पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार॥

(२)

(राग भैरव—दीपचंदी)

साँवरौ मंगल रूप निधान।
जा दिन तैं हरि गोकुल प्रगटे, दिन-दिन होत कल्यान॥
बैठे रहौ, स्याम-गुन सुमिरौ, रैन-दिनाँ, सब जाम।
श्रीभट के प्रभु नैन भरि देखौ, पीतांबर घनस्याम॥

(३)

(राग बिलावल—तीन ताल)

सोभित कर नवनीत लिएँ।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किएँ॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिएँ।
लर लटकन मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहि पिएँ॥
कठुला कंठ बज्र, केहरि-नख, राजत रुचिर हिएँ।
धन्य 'सूर' एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिएँ॥

(४)

(राग बिहाग—तीन ताल)

री चकई! चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम बियोग।
जहँ भ्रम-निसा होत नहिं कबहूँ, सो सायर सुख जोग॥
सनक-से हंस, मीन सिव, मुनिजन, नख रबि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि डर, गुंजत निगम सुबास॥
जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल, बिमल सुकृत-जल पीजै।
सो सर छाड़ि कुबुद्धि-बिहंगम! इहाँ कहा रहि कीजै॥
जहँ श्री सहस सहित हरि क्रीड़त, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात बिषय-रस छीलर, वा समुद्र की आस॥

(५)

(राग भैरवी—कहरवा)

छबि छाई छबीली बृंदावन में। आज खेलैं अकेले कहुँ कुंजन में॥

त्रिबिध समीर पुलिन तीर चलि रही कैसी।
तरनि तनया तरंग संग बहि रही कैसी॥
गीत कल कंठ सौं कोयल कहि रही कैसी।
मत्त मयूर नृत्य बृत्य लै रही कैसी॥
राधे रानी! पधारौ आज कुंजन में॥ छबि०॥

कुँवरि किसोरी भोरी भानु की दुलारी तू।
खनि, रासेस्वरी, प्रान-धन हमारी तू॥
तोय राखौं सदा इन नैनन में॥ छबि०॥

सुमन सुगंध कुंद मंद-मंद महकाई।
पवन-झकोर डार फूल-भार लहराई॥
मानौ ठाड़ी बुलावै तुम्हें सैनन में॥ छबि०॥

आज रस रास सुख लूटि सखी हरषैंगी।
रूप की रासि राधे देखि रंग बरषैंगी॥
मीठी तान सुनाय मृदु बैनन में॥ छबि०॥

(६)

(राग भैरवी—कहरवा)

चलौ, चलौ री किसोरी बृंदाबन में।
कैसी छाई हरियाली आज कुंजन में।

सीतल मंद सुगंध जुत चलि रहि त्रिबिध समीर।
तुमहु पधारौ, रास करि हरिऐ जन-मन-पीर॥
प्रेमबावरे बने री तेरे दरसन में॥ चलौ०॥

चमकि चंद की चाँदनी मो मन रही लुभाय।
मति देखौ या चंद कौं देय न दीठि लगाय॥
आज दियौ ना डिठौना गोरे आनन में॥ चलौ०॥

सुक-पिक-खंजन द्रुमन चढ़ि चहकि रहे हरषाय।
मनहुं रास-रस निरखिबे प्रेमी रहे तुराय॥
प्रेम बावरे बनेंगे तेरे दरसन में॥ चलौ०॥
तुम भोरे, अति सरल चित, ये व्रजतिय सब ढीठ।
तबही तौ नित मान करि दै बैठत हौ पीठ॥
नित कैसैं मनाऊँ परि चरनन में॥ चलौ०॥
करन लगे फिरि अचगरी बोलत कुटिल सुभाय।
तेरी कुटिल कटाच्छ लखि को न जाय बौराय॥
कैसौ भर्‌यौ है मिठास इन बैनन में॥ चलौ०॥
ये पपिहा पिउ-पिउ रटत, मो मन करत उदास।
है अधीन मागत मनौं बृंदाबन कौ बास॥
कब परैगी पुकार तेरे स्रवनन में॥ चलौ०॥
मोहि लजावत बृथा हरि! तुम रस-प्रेमी भृंग।
'स्याम' करत बिनती रहै, अनुदिन राखौ संग॥
मेरौ जनम सुफल पग-परसन में॥ चलौ०॥

(७)

(राग तिलक कामोद—तीन ताल)

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे, तोये मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोक माँ सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी, पर-स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे॥
मोह-माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमाँ रे।
राम नाम सुं ताळी लागी, सकल तीरथ तेना तनमाँ रे॥
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम-क्रोध निर्वार्या रे।
भणे नरसैयो, तेनु दरसन करताँ कुळ एकोतेर तार्या रे॥

(८)

(राग पीलू—दीपचंदी)

एते गुन जामें, सो संत।
श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमला-कंत॥
हरि कौ भजन, साधु की सेवा, सर्ब भूत पर दाया।
हिंसा-लोभ-दंभ-छल त्यागै, बिष सम देखै माया॥
सहन-सील, आसय उदार, चित धीरज, धर्म-बिबेकी।
सत्य बचन, सब कौं सुख दायक, गहि अनन्य ब्रत एकी॥
इंद्रिय जित, अभिमान न जाकें, करै जगत कौं पावन।
भगवत रसिक तासु की संगति तीनौं ताप नसावन॥

(९)

(तर्ज लावनी—कहरवा)

(महात्मा कपोतके प्रसङ्गमें व्याधके उद्‌गार)

मुझ-सा था कोई न जगत्‌में अधम पातकी क्रूर महान्।
जिसने की हत्या अगणित असहाय प्राणियोंकी अज्ञान॥
वर्षापीड़ित, दयापात्र थी सहज कपोती वह निर्दोष।
पकड़ डाल ली उसे पींजरेमें मुझ लोभीने भर रोष॥
दयामयी उसने अपने घर आये मुझको दुःखित जान।
पति कपोतसे कहा—'करो इस मान्य अतिथिको सेवा-दान॥
पिंजर-बंद देख मुझको अब करो नहीं तुम चिंता नेक।
कर्मभोग कर उऋण हो रही, मैं, तुम रखो धर्मकी टेक'॥
ठिठुर रहा था सर्दीसे मैं, काँप रही थी सारी देह।
लाया आग दूरसे, पत्ते किये प्रज्वलित, सहज स्नेह॥
क्षुधित जान मुझको फिर विहग-महात्माने कर दया अपार।
किया प्रवेश अग्निमें, हर्षित हो, बनने मेरा आहार॥
पिंजरा खुलते ही वह सती कपोती भी भर मन आनन्द।
तुरत अग्निमें गिरी, हो गयी भस्म संग पतिके स्वच्छन्द॥

इतनेमें आ उतरा नभसे सुन्दर सज्जित दिव्य विमान।
चढ़े दम्पती दिव्य रूप धर, दिव्यलोकको किया प्रयाण॥
मैं भी हुआ सचेत अतिथिवत्सल उन दोनोंका पा संग।
सर्वत्याग कर चला तपस्वी हो, हो गया मोह सब भंग॥
कर कठोर तप, जला अग्निमें मैंने व्याध-देह वह घोर।
पहुँच गया मैं स्वर्गलोकमें, छाया निर्मल सुख सब ओर॥
धन्य कपोत-कपोती, धन्य अतिथि-सुख हित उनका शुचि त्याग।
धन्य व्याध मैं हुआ सुनिर्मल दिव्यलोकवासी बड़भाग॥

(१०)

(राग केदारा—तीन ताल)

ऐसी कौन प्रभु की रीति।
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति॥
गई मारन पूतना, कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादव राइ॥
काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्हि।
जगत-पिता बिरंचि जिन्ह के चरन की रज लीन्हि॥
नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि-गनि गारि।
कियो लीन सो आपु में हरि राज-सभा मँझारि॥
ब्याध चित दै चरन मार्‌यो मूढ़मति मृग जानि।
सो सदेह स्वलोक पठयो, प्रगट करि निज बानि॥
कौन तिन्ह की कहै, जिन्ह कें सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रगट पातक रूप तुलसी सरन राख्यो सोउ॥

(११)

(राग केदारा—तीन ताल)

देखौ हरि की एक सुभाय।
अति गंभीर उदार-उदधि प्रभु जान-सिरोमनि-राय॥

राई-जितनी सेवा कौ फल मानत मेरु समान।
समुझ दास-अपराध सिंधु सम एकौ बूंद न आन॥
बदन प्रसन्न कमल पद सन्मुख जानत हू बनै ऐसैं।
बिमुखहु भऐं कृपा या तन की जब चितवौं तब तैसैं॥
भक्त-बिरह-कातर करुनामय डोलत पाछें लागे।
सूरदास ऐसे प्रभु कौं कत दीजै पीठ अभागे॥

(१२)

(राग केदारा—तीन ताल)

(कृतघ्न गौतम और मित्रधर्मारूढ़ बकपति राजधर्मा)

अति कृतघ्न जड़ पापी गौतम।
सहज सरन-धन दै जिन्ह राख्यौ, तिन्ह की हत्या करी नीचतम॥
बकपति बिमल राजधर्मा हे, रहे मित्र तिन्ह के दोउ सत्तम।
विरूपाच्छ राच्छसपति, सुरपति, तीनन्हि में रहि प्रीति अनुत्तम॥
विरूपाच्छ ने पकरि मँगायौ गौतम कौं तेहि छिन करि उद्यम।
भीषण सस्त्रनि काटि दियै सब ताके अंग अंग नीचाधम॥
मांस न ग्रहन कियौ कृतघ्न कौ नर-मासांहारी जन लघुतम।
आस्त्रय-मित्र-द्रोहकारी की देह घृनित अतिसय असुद्धतम॥
स्वर्ग-सुरभि-मुखफेन सुधामय झरत चिता सों उठे बकोत्तम।
मिले बिरूपाच्छहि उड़ि सत्वर, उमग्यौ प्रेम-समुद्र बृहत्तम॥
आए इंद्र मिलन दोउ मित्रन्हि, करि स्वागत बैठारि निकटतम।
बोले धर्मस्वरूप राजधर्मा, मम बिनय सुनौ 'देवोत्तम!॥
गौतम मित्र हमारौ सुरपति, ताहि जिवाय हरौ दुख-बिभ्रम।
करौ कृपा, दै दान धर्मरुचि करौ सुद्ध गौतम अधमाधम'॥
हिचके इंद्र, लगे समुझावन राच्छसराज मित्र परमोत्तम।
माने नाहिं राजधर्मा तब सींच्यौ सुधा सक्र सुचि अनुपम॥
जीवित भयौ पापरत गौतम भयौ धर्मजीवन उज्ज्वलतम।
धन्य मित्र! इहि बिधि जिन कीन्हौं मित्र कृतघ्नहि समुद आपु सम॥

(१३)

(राग सारंग—तीन ताल)

संग फिरत है काल, भ्रमत नित सीसपर।
यह तन अति छनभंग, धुवाँ कौ धौरहर॥
यातें दुरलभ साँस न बृथा गँवाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
चली जाति है आयु जगत-जंजालमें।
कहत टेरि कैं घरी-घरी घरियाल में॥
समै चूकि कैं काम न फिरि पछिताइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
सुत-पितु-पति-तिय-मोह महा दुखमूल है।
जग मृग-तृस्ना देखि रह्यौ क्यौं भूलि है॥
स्वप्न राजसुख पाय न मन ललचाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
कलह-कलपना, काम-कलेस निवारनौ।
परनिंदा-परद्रोह न कबहुँ बिचारनौ॥
जग-प्रपंच चटसार न चित्त पढ़ाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
अंतर कुटिल, कठोर, भरे अभिमान सौं।
तिन कें गृह नहिं रहैं संत सनमान सौं॥
उन की संगति भूलि न कबहूँ जाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
कहूँ न कबहूँ चैन, जगत दुख-कूप है।
हरिभक्तन कौ संग सदा सुखरूप है॥
इन के ढिग आनंदित समय बिताइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
ब्रज बृंदाबन स्याम-पियारी भूमि है।
तहँ फल-फूलनि भार रहे द्रुम झूमि हैं॥

भुवि दंपति-पद-अंकनि लोट लुटाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥
नंदीस्वर, बरसानौ, गोकुल गाँवरौ।
बंसीबट, संकेत, रमत तहँ साँवरौ॥
गोबर्धन राधाकुंड सु जमुना जाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
नंद, जसोदा, कीरति, श्रीबृषभान हैं।
इन तैं बड़ौ न कोऊ जग में आन है॥
गो-गोपी-गोपादिक पद-रज ध्याइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
बँधे उलूखल लाल दमोदर हारि कैं।
बिस्व दिखायौ बदन, बृच्छ दिए तारि कैं॥
लीला ललित अनेक, पार कित पाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥
मेटि महोच्छव इंद्र कुपित कीन्हौ महा।
जल बरसायौ प्रलयकरन, कहिऐ कहा॥
गिरि धरि कियौ सहाय, सरन जिहिं जाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
राधा हित ब्रज तजत नहीं पल साँवरौ।
नागर नित्य बिहार करत मन-भावरौ॥
राधा-ब्रज मिश्रित जस रसन रसाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥
ब्रज-रस-लीला सुनत न कबहुँ अघावनौ।
ब्रज-भक्तन सत-संगति प्रान पगावनौ॥
'नागरिया' ब्रजबास कृपा-फल पाइऐ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइऐ॥

(१४)

(राग टोड़ी—तीन ताल)

प्रात समै हरि-नाम लीजिऐ, आनँद-मंगल में दिन जाय।
चक्रपानि करुनामय केसव बिघ्न-बिनासन जादव राय॥
कलिमल हरन, तरन भव-सागर, भक्त चिंतामनि कामधेनु।
ऐसो समरथ नाम हरी कौ बंदनीक पावन पद-रेनु॥
सिव बिरंचि इंद्रादि देवता मुनि जन करत नाम की आस।
भक्तबछल हरिनाम कल्पतरु बरदायक परमानँददास॥

(१५)

(राग पूरबी—तीन ताल)

कृष्न नाम रसना रटै सोई धन्य कलि में।
ताके पद-पंकज की चरन-रेनु बलि मैं॥
सोइ सुकृति, सोइ पुनीत, सोई गुनवंता।
जाकें निसिबासर रहै कृष्न-नाम-चिंता॥
जप-तप, तीरथ-ब्रत कृष्न नाम माहीं।
बिना कृष्न नाम या कलि उधार नाहीं॥
सब सुख कौ सार कृष्न कबहूँ न बिसरिऐ।
कृष्न नाम लै लै भवसागर सौं तरिऐ॥
(श्री) गोबर्धनधरन धीर परम मँगल कारी।
उधरे जन सूरदास तिन की बलिहारी॥

(१६)

(राग देसकार—रूपक)

नयननि ध्यान नंदकुमार।
सीस मुकुट सिखंड भ्राजत, नहिन उपमा-पार॥
कुटिल केस सुदेस भ्राजित, मनहुँ मधुकर-जाल।
रुचिर केसर तिलक दीन्हौ, परम शोभा भाल॥

भृकुटि बंक, सुचारु लोचन, रहीं जुबतीं देखि।
मनौं खंजन चाप-डर ते उड़त नहिं तिहि पेखि॥
मकर-कुंडल गंड झलकत, निरखि लज्जित काम।
नासिका-छबि कीर लज्जित, कबिन बरनत नाम॥
अधर बिद्रुम, दसन दाड़िम, चिबुक है चित चोर।
सूर प्रभु-मुख चंद पूरन, नारि-नयन चकोर॥

(१७)

(राग दुर्गा—तीन ताल)

तरैटी (श्री) गोबर्धन की रहिऐ।
नितप्रति मदनगुपाल लाल के चरन-कमल चित लैऐ।
तन पुलकित ब्रज-रज में लोटत, गोबिंद कुंड में न्हैऐ।
रसिक प्रीतम हित चित की बातैं (श्री) गिरिधारी (जी) सौं कहिऐ॥

(१८)

(राग बागेश्री कान्हरा—कहरवा)

खंजन नैन सुरँग रस माते।
अतिसय चारु बिमल दृग चंचल पल पिंजरा न समाते॥
बसे कहूँ सोइ बात सखी कहि रहे इहाँ किहि नातें।
सोइ संग्या देखत औरासी बिकल उदास कला तें॥
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के सकि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन-गुन अटके, नतरु कबै उड़ि जाते॥

(१९)

(राग यमन—कहरवा)

बिछुरे पिय कें जग सूनौ भयौ, अब का करियै किहिं पेखियै का।
सुख छाड़ि कें संगम कौ तुम्हरे, इन तुच्छन कौं अब लेखियै का॥
हरिचंद जो हीरन कौ ब्यौहार तौ काचन कौं लै परेखियै का।
जिन आँखिन मे तुअ रूप बस्यौ, उन आँखिन सौं फिरि देखियै का॥

(२०)

(राग यमन—कहरवा)

कानन दूसरौ नाम सुनै नहिं, एकहि रंग रँगौ यह डोरौ।
धोखेहु दूसरौ नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरौ॥
ठाकुर चित्त की बृत्ति यहै, हम कैसैहुँ टेक तजैं नहिं भोरौ।
बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ, जो साँवरौ छाड़ि निहारति गोरौ॥

(२१)

(तर्ज लावनी—कहरवा)

वेणी वर लहरानेवाली ज्यों व्यालिनी विशाल, सखी!॥
दो दिन डस ले, फिर तो वह मनके तारोंका जाल, सखी!॥
अमिय-हलाहल-मदिरावाली आँखोंके पीछे क्या है?
भयकारी दो छिद्रोंवाला खप्पर बना कपाल, सखी!॥
कहाँ कपोलोंमें आकर्षण, कैसे अधर रसाल, सखी?
शोणित-मांस-वसा-लाला पर कसी गुलाबी खाल, सखी!॥
उभय उरोज कमर झुकनेसे पहले ही पड़ते हैं झूल।
भूल दन्ति-गति बच जायेगा केवल जड कङ्काल, सखी!॥
मादक मञ्जरियोंसे शोभित जो तनरूप रसाल, सखी!
गा-गाकर जिसकी डालोंपर परभृत हुआ निहाल, सखी!॥
आज नहीं तो कल सूखेगा, ढेर मात्र है ईंधन का।
उड़ जायेगी कोयल, आकर बैठेगा बैताल, सखी!॥
अत: रीझना और रिझाना, छोड़ बिछाना जाल, सखी!
ठगना और ठगाना जगमें रखकर रूप-दलाल सखी!॥
यह व्यापार चार दिनका, बस, जीवन व्यर्थ गवाँ मत यों।
नन्दलालके चरण-सरोरुहमें अपनेको डाल, सखी!॥
लंबी वेणीमें लपेट ले हरि-पद-पद्म-मृणाल सखी!
जीवन सफल बना ले अपना भजकर श्रीगोपाल, सखी!॥
ऐसी पारस-शिला बनेगी, आयेगा जो लौह निकट!
जैसा भी हो, चमक उठेगा बन सुवर्ण तत्काल सखी!॥

(२२)

(राग बिहाग—तीन ताल)

रे मन! मूरख जनम गँवायौ।
करि अभिमान विषय रस राच्यौ, स्याम-सरन नहिं आयौ॥
यह संसार फूल सेंवर कौ सुंदर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यो, रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयौ॥
कहा होत अब के पछिताएँ, पहिलैं पाप कमायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछितायौ॥

(२३)

(राग बिहाग—तीन ताल)

अपुनपौ आपुनही बिसर्‌यौ।
जैसैं स्वान काँच-मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूँसि मर्‌यौ॥
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृन सूँघि फिर्‌यौ।
ज्यौं सपने में रंक भूप भयौ, तस्कर अरि पकर्‌यौ॥
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कैं आपुनु कूप पर्‌यौ।
जैसैं गज लखि फटिक-सिला में, दसननि जाइ अर्‌यौ॥
मर्कट मूँठि छाड़ि नहिं दीनी, घर-घर द्वार फिर्‌यौ।
सूरदास नलिनी कौ सुवटा कहि कौनें जकर्‌यौ॥

(२४)

(राग बृंदावनी सारंग—दीपचंदी)

रे मन! समुझि सोचि-बिचारि।
भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकारि॥
साधु-संगति डारि पासा, फेर रसना-सारि।
दाव अब कैं पर्‌यौ पूरौ, जीति पिछली हारि॥
राखि सतरह, सुनि अठारह, पाँच ही कौं मारि।
दूरि तैं तजि तीनि काने, चतुर चौक बिचारि॥

काम-क्रोध-जँजाल भूल्यौ, ठग्यौ ठगिनी नारि।
सूर हरि के पद-भजन बिनु चल्यौ दोउ कर झारि॥

(२५)

(राग आसावरी—एक ताल)

सुमिरौ नंद नागर बर सुंदर गोपाल लाल,
सब दुख मिटि जैहैं वे चिंतत लोचन बिसाल।
अलकन की झलकन लखि पलकन गति भूलि जात,
भ्रू-बिलास मंद हास रदन-छदन अति रसाल॥
निंदत रबि कुंडल-छबि गंड-मुकुर झलमलात,
पिच्छ-गुच्छ कृत बतंस, इंदु बिमल बिंदु भाल।
अंग-अंग जित अनंग माधुरी-तरंग-रंग,
बिमद-मद गयंद होत देखत लटकीली चाल।
हसन-लसन पीत बसन, चारु हार बर सिंगार,
तुलसि-रचित कुसुम-खचित पीन उर नवीन माल।
ब्रज-नरेस बंस-दीप, बृंदाबन बर महीप,
बृषभान-मानपात्र, सहज दीनजन दयाल।
रसिक-भूप, रूप-रासि, गुन-निधान, जानराय,
गदाधर प्रभु जुबती-जन मुनि-मन-मानस मराल।

(२६)

(राग जंगला—कहरवा)

हे राधे! बृषभानुनन्दिनी मम मन-नन्दिनि सुषमागार।
तेरी परम सुखद सुस्मृति ही है मेरी जीवन-आधार॥
कनक-गौर अनुपम वर तनपर नील वसन नव रहा विराज।
अङ्ग-अङ्ग अति मधुर मनोहर सजे सकल विधि सुन्दर साज॥
वदन-सरोज प्रफुल्ल, सौरभित, नवपीयूष मधुर मकरन्द।
रहते सदा अतृप्त पान-रत मधुलोभी मम नयन-मिलिन्द॥

रासेश्वरि, रस-रास-विलासिनि, मनमोहिनि, निर्मल सुखसार। तेरी०
बिम्बाधर अति मधुर सुधा-रस-भरित, ललित शुचि गोल कपोल।
रत्न-द्युति-भासित, श्रुति-रञ्जन, परम सुशोभित कुण्डल लोल॥
कुटिल नयन कज्जल-अनुरञ्जित, अति विशाल, रसभरे ललाम।
बंकिम भृकुटि, पञ्चशर-शर-सी सुघड़ नासिका शोभाधाम॥
परमाह्लादिनि ह्लादिनि श्यामा प्रेम-सुधा-रस-उदधि अपार॥ तेरी०
मधुकर-कृष्ण मनोहर चिक्कण चिकुर सुशोभित वेणि अनूप।
सुमन सुगन्धित गुँथे मनोरम, मणिमय मुकुट, विलक्षण रूप॥
नित नव अनुरागिनि, बड़भागिनि, भूषण विविध विराजित अंग।
वक्ष उतुंग कञ्चुकी-शोभित, शीश चूनरी मोहन रंग॥
चिबुक मनोहर, कम्बु-कण्ठ कमनीय, कुसुम-मुक्ता-मणिहार। तेरी०
मन्द उदर रेखात्रय-राजित, नाभि गभीर, मधुर, अभिराम।
कृश कटि सुन्दर किङ्किणि शोभित, कर-पद मेंहदी रची सुठाम॥
सकल कला निधि, गुणनिधि, गुण-वर्णन-अक्षम श्रुति शारद-शेष।
मन्मथ-मन्मथ-मानस-मन्थिनि सदा सुहागिनि सुन्दर वेश॥
नित्य निकुञ्जेश्वरि नव-कुञ्ज-विहारिणि करती नित्य विहार। तेरी०

Says Sri Kṛṣṇa :-

O Rādhā, Vṛṣabhānu's Daughter, the delight of my mind and the abode of exquisite splendour, your blessed thought alone, the supreme source of felicity, is the mainstay of my life. Your incomparably excellent golden yellow form looks graceful in or ever new azure attire. Embellishments charming in every way have found a befitting place on each of your most lovely and heart-stealing limbs. Your face is a full-blown lotus emitting fragrance and filled with nectar-like luscious honey (in the shape of comeliness) which never grows stale. Black bees in the form of my eyes, which are

greedy of honey, ever remain engaged in sucking it and never feel sated. O deity presiding over the Rāsa Dance and revelling in the blissful Rāsa, soul-captivating and the quintessence of untarnished joy, your blessed thought alone, the source of supreme felicity, is the mainstay of my life.

Your lips resembling a (ripe) Bimba fruit, are full of exceedingly sweet nectarean bliss and your cheeks are lovely, bright and round. Your dangling ear-rings, lit up by the splendour of jewels and heightening the charm of your ears, appear most graceful. Your eyes with sidelong glances, their edges tinted with collyrium, are extraordinarily large, full of charm and beauteous. Your curved eye-brows and shapely nose resembling the shaft of love-god are an abode of grace. You, O supremely delighting Syāmā, my Enrapturing Energy, and a boundless ocean of nectarean sweetness in the form of Love, your blessed thought alone, the source of supreme felicity, is the mainstay of my life.

Your capitvating sleek tresses, black as the black bee, look most graceful in the form of a peerless braid, strung with fragrant flowers; a fascinating crown of gems adorns your head; all these endow you with an unsurpassable charm. Overflowing with a ever-freshening love, you are blessed with a rare good fortune and your limbs are decked with various ornaments. Your projecting breasts are graced with a brassiere and Your head is covered with a Chunri (a speckled cloth of entrancing hue). Your chin captivates the mind and your conch-shaped neck is adorned with lovely wreaths of flowers and necklaces of pearls and gems. Your blessed thought alone,

the source of supreme felicity, is the mainstay of my life.

Your thin belly graced with three folds and your deep navel are (both) enchanting and delightful. A beautiful ornament with tiny bells adorns your slender waist and your hands and feet are artistically coloured with the paste of Menhdi leaves. You are the repository of all fine arts and a mine of virtues; (even) the Vedas Śāradā (the goddess presiding over speech) and Śeṣa (the thousand-headed serpent-god) are incapable of recounting your excellences. You stir the mind even of Śrī Kṛṣṇa (myself, who churn the mind of Cupid); you ever enjoy the love of your Divine Spouse (myself) and are dressed in an attractive garb. O Goddess eternally presiding over the inner arbours of Brindaban, fond of sporting in ever-newbours, you remain ever engaged in pastimes. Your blessed thought alone, the source of supreme felicity, is the mainstay of my life.

(२७)

(राग नट—तीन ताल)

नवकिशोर नटवर मुरलीधर मधुर मयूर-मुकुटधर लाल।
कटि पट पीत, करधनी कूजित, विकट भृकुटि, मधु नयन विशाल॥
अतुलनीय सौन्दर्य निकेतन द्विभुज, कण्ठ मणि-मुक्ता-माल।
गोल कपोल अरुण नीलाभायुत, गोरोचन-तिलक सुभाल॥
भूषण-भूषण अङ्ग ललित अति, तन त्रिभङ्ग, त्रिभुवन-मादन।
मुख शरदिन्दु-सुभग सुषमानिधि राधा-तन-मन-सुख-साधन॥
देख रूप निज हुए चमत्कृत मोहन मन्मथ-मन्मथ श्याम।
जाग उठा तुरंत मनमें शुचि निज-सौन्दर्यास्वादन-काम॥

Holding a flute in his hands, the sweet juvenescent Darling of Nanda, the foremost of dancers, dons (on his head) a coronet adorned with the plume of a peacock. He has a yellow cloth about His loins encircled with a tinkling zone, has curved eyebrows and large attractive eyes. Having a pair of arms which are an abode of incomparable charm, he is adorned with a necklace of gems and pearls and is distinguished by ruddy round cheeks with a bluish splendour. He wears a sacred mark of Gorochana (a bright yellow pigment prepared from the bile of a cow) on His excellent forehead. His most charming limbs serve as an embellishment to the ornaments themselves; while His body slanting at three places, viz. the neck, the waist and the legs, maddens (the denizens of) all the three worlds (the earth, the heaven and the region intervening them). His countenance, graceful as the autumnal (full) moon, is a storehouse of surpassing elegance and a source of delight to the body as well as to the mind of Śrī Rādhā. Śrī Kṛṣṇa (who wears a dark-brown hue), the enchanter of all, who churns the mind (even) of the god of love, was fascinated to behold his own form and a sublime longing to enjoy His own charm was forthwith awakened in his mind.

(२८)

(राग पूर्वी—एक ताल)

रुचिर तपन-तनया-तट, निभृत नव निकुंज निकट,
निरतत नव नागर नट, लसत पीत पट ललाम।
सोभा निरुपाधि सजत, कोटि-कोटि काम लजत,
मुरलि अधर मधुर बजत, भजत संत नित निकाम।

मृग-मद रुचि तिलक भाल, चंचल लोचन बिसाल,
कुंचित कच कृष्ण जाल, भृकुटि कुटिल कलाधाम।
करि-बर-मद-हरनि चाल, कटि किंकिनि-रव रसाल,
सुरभित बन-कुसुममाल, रत्नहार कंठ-धाम।
कुंडल-मनि-रत्न-चमक, सुचि कपोल गोल दमक,
अंग-अंग सुरभि गमक, रमा रमत वक्षधाम।
निपट सुखद खटपट-रति, लपट-झपट नटखट गति,
आकरषत तन-मन-मति, इंद्रिय झट बिना दाम।
मृदु मधु मुसुकान बिमल, मुनि-जन-मन हरत स-बल,
मिटत दुःख-दैन्य सकल, परम रम्य सुधाधाम।
रसमय रसराज सतत, रस-बरषा बरसत नित,
नेह-सिंधु उमगि अमित, बहे अन्य रस तमाम।
बाढ्यौ अति प्रेम भाव, सब कें मन भरयौ चाव,
भाव भयौ महाभाव, भूले सब नाम-धाम।

On the lovely bank of the Yamuna (daughter of the Sun-god), adjoining an evergreen innermost arbour (of the transcendent Brindaban), is dancing the juvenescent accomplished divine Dancer (Sri kṛṣṇa), his charming yellow garment looking splendid. A supernal elegance clothes his person, putting to shame crores of Cupids. The flute on his lips is emitting sweet strains. Saints ever devoid of desire adore him. On his forehead shines a sacred mark of musk. His large eyes keep rolling. A mass of curly black hair adorns his head. His curved eyebrows are an abode of artistry. His gait takes away the pride of the best of elephants; skirting his waist an ornament with tiny bells emits a sweet jengling sound. A garland of fragrant sylvan flowers and a necklace of jewels are hanging round his neck. The gems and jewels of his ear-rings are

casting their splendour. High bright round cheeks are full of glow. Every limb of His scatters forth its fragrance, and Ramā (the goddess of beauty and fortune) feels rejoiced on His bosom, Her (eternal) abode. His highly pleasing love for picking quarrels, his grapple for embrace and his froliesome movements gratuitously attract one's body, mind, intellect and senses in no time. His gentle, sweet and guileless smile forcibly lures away the mind of ascetics; all one's sufferings and misery melt away (at its very sight), most delightful and a storehouse of nectar as it is. The ever-blissful Srī Kṛṣṇa (Transcendent Joy personified) is pouring a shower of Bliss all the time, owing to which the ocean of love swelled immeasurably, carrying away all other delights. The feeling of love rose high, the hearts of all got filled with a longing; Love manifested itself in its original state of Love supreme, all names and existence fell into oblivion.

(२९)

(राग बिलास टोड़ी—तीन ताल)

कृपा जो राधा जू की चहियै।
तौ राधाबर की सेवा में तन-मन सदा उमहियै॥
माधव की सुख-मूल राधिका, तिन के अनुगत रहियै।
तिन के सुख-संपादन कौ पथ सूधौ अबिरल गहियै॥
राधा-पद-सरोज-सेवा में चित निज नित अरुझइयै।
या बिधि स्याम-सुखद राधा-सेवा सौं स्याम रिझइयै॥
रीझत स्याम राधिका रानी की अनुकंपा पइयै।
निभृत निकुंज जुगल सेवा कौ सरस सुअवसर लहियै॥

If you seek the grace of Rādhā, the divine, let ever

your body and soul overflow with enthusiasm in the service of Rādha's lord. (Since) Rādhikā is the fount of Madhava's joy, follow Rādhā's will and tread unceasingly the path of ministering to Her happiness without deviation. Let your mind ever remain engrossed in the service of Rādhā's lotus feet. In this way captivate Syāmā through service to Rādhā, which is the (only) source of felicity to him. No sooner does Syāma get captivated than you obtain the grace of Rādhikā Ranī and secure the sweet and sublime opportunity to serve the blessed couple in the innermost arbours (of the transcendent Brindaban).

(३०)

(राग भीमपलासी—तीन ताल)

हुआ समर्पण प्रभु-चरणोंमें जो कुछ था सब मैं-मेरा।
अग-जगसे उठ गया सदाको चिर-संचित सारा डेरा॥
मेरी सारी ममताका अब रहा एक प्रभुसे सम्बन्ध।
प्रीति, प्रतीति, सगाई सब ही मिटी, खुल गये सारे बन्ध॥
प्रेम उन्हींमें, भाव उन्हींका, उनमेंही सारा संसार।
उनके सिवा शेष कोई भी बचा न, जिससे हो व्यवहार॥
नहीं चाहती जाने कोई, मेरी इस स्थितिकी कुछ बात।
मेरे प्राण-प्रियतम प्रभुसे भी यह रहे सदा अज्ञात॥
सुन्दर सु-मन सरस सुरभित मृदुसे मैं नित अर्चन करती।
अति गोपन, वे जान न जायें कभी, इसी डरसे डरती॥
मेरी यह शुचि अर्चा चलती रहे सुरक्षित काल अनन्त।
रहूँ कहीं भी, कैसे भी; पर इसका कभी न आवे अन्त॥
इस मेरी पूजासे पाती रहूँ नित्य मैं ही आनन्द।
बढ़े निरन्तर रुचि अर्चामें, बढ़े नित्य ही परमानन्द॥
बढ़ती अर्चा ही अर्चाका फल हो एकमात्र पावन।
नित्य निरखती रहूँ रूप मैं उनका अतिशय मनभावन॥

वे न देख पायें पर मुझको, मेरी पूजाको न कभी।
देख पायँगे वे यदि, होगा भाव विपर्यय विमल सभी॥
रह नहिं पायेगा फिर मेरा यह एकाङ्गी निर्मल भाव।
फिर तो नये-नये उपजेंगे प्रियसे सुख पानेके चाव॥

My own self as well as all that was mine lies dedicated at the Lords's feet. All my dependence, treasured long, on the immobile as well as on the mobile creation has ceased for good. All my sense of mine centres now in the Lord alone. Affection, confidence and affinity have all ended; all knots have been loosened. Love is (now) confined in Him alone, sentiment to Him alone, and in Him alone remains located all the world. No one is left other than Him with whom to deal. I do not wish that anyone should know anything about this state of mine. (Nay) it should ever remain unknown even to the Lord, who is dearest as life to me. I always worship the Lord with the lovely, sweet, fragrant and tender flower of my cheerful mind in strict secrecy. I remain afraid lest He should come to know of it at any time. May this holy worship of mine remain wholly intact till eternity. Wherever and in whatever condition I may live, there should be no end to it. Let me alone ever continue to derive joy from this worship of mine. Let my fondness for worship incessantly grow, and so should my supreme joy ever increase. Let worship growing more and more intense be the only sacred reward of this worship. Let me ever continue to feast my eyes on his exceedingly soul-captivating form. But let him never have an opportunity to see me nor my worship. If he (ever) comes to see it, my holy motive will get immediately polluted. This unalloyed motive of

mine seeking no reciprocity will then cease to exist. It will, on the other hand, be followed by a repeated yearning to derive newer and never joys from my Beloved.

(३१)

(राग बागेश्री—तीन ताल)

सौंप दिये मन-प्राण तुम्हींको, सौंप दिये ममता-अभिमान।
जब जैसे मन चाहे बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान॥
मत सकुचाओ मन की करते, सोचो नहीं दूसरी बात।
मेरा कुछ भी रहा न अब तो, तुमको सब कुछ पूरा ज्ञात॥
मान-अमान, दुःख-सुखसे अब मेरा रहा न कुछ सम्बन्ध।
तुम्हीं एक कैवल्य मोक्ष हो, तुम ही केवल मेरे बन्ध॥
रहूँ कहीं, कैसे भी, रहती बसी तुम्हारे अंदर नित्य।
छूटे सभी अन्य आश्रय अब, मिटे सभी सम्बन्ध अनित्य॥
एक तुम्हारे चरण-कमलमें हुआ विसर्जित सब संसार।
रहे एक स्वामी बस, तुम ही करो सदा स्वच्छन्द विहार॥

To you alone have I dedicated my mind and life-breath, to you have I consigned the sense of possession and the ego-sense. Treating them as absolutely yours, use them as and when you will. Do not be shy of doing as you please (with them), do not think otherwise. Nothing whatsoever is left now which I can call my own: everything is fully known to you. Honour and dishonour, joy and sorrow are no longer my concern: You alone are my absolute emancipation (from the hold of matter), you alone consititute my bond. Wherever and in whatever condition I may live, I eternally abide in you. All other supports have now fallen, all transient relationships have ceased for good. All my world lies relinquished at your lotus

feet alone, my lord, and you alone are (now) left; (as such) carry on your pastime ever at will.

(३२)

(राग बिहाग—तीन ताल)

अहो हरि! वेहू दिन कब ऐहैं।
जा दिनमें तजि और संग सब हम ब्रज-बास बसैहैं॥
संग करत नित हरिभक्तन कौ हम नैकहुँ न अघैहैं।
सुनत स्रवन हरि-कथा सुधा-रस महामत्त ह्वै जैहैं॥
कब इन दोउ नैननि सौं निसिदिन नीर निरंतर बहिहैं।
हरीचंद श्रीराधे-राधे, कृष्ण-कृष्ण कब कहिहैं॥

(३३)*

(राग मल्हार—दीपचंदी)

जो सुख होत गुपालहि गाऍं।
सो न होत जप-तप, ब्रत-संजम, कोटिक तीरथ न्हाऍं॥
गदगद गिरा, नयन जल-धारा, प्रेम-पुलक तन छाऍं।
तीनि लोक सुख तृन सम लेखत नंद-नँदन उर आऍं॥
दिऍं लेत नहिं चारि पदारथ (श्री) हरि-चरननि अरुझाऍं।
सूरदास गोबिंद-भजन बिनु चित नहिं चलत चलाऍं॥

----

* जिन्हें संगीतका अभ्यास हो, वे यदि उपर्युक्त ३३ पदोंका यथानिर्दिष्ट राग और तालमें गायेंगे तथा पद सं० १ से ३ को षड्जसे, ४ से ६ को ऋषभसे, ७ से ९ को गान्धारसे, १० से १२ को मध्यमसे, १३ से १५ को पञ्चमसे, १६ से १८ को धैवतसे, १९ से २१ को निषादसे, २२ से २४ को तारसप्तकके षड्जसे, २५ को धैवतसे, २६ को निषादसे, २७ को तारसप्तकके षड्जसे, २८ को षड्जसे, २९ को ऋषभसे, ३० को गान्धारसे, ३१ को मध्यमसे, ३२ को पञ्चमसे और ३३ को गान्धारसे प्रारम्भ करेंगे तो उन्हें विशेषरूपसे भगवद्रसकी उपलब्धि होगी।

परिशिष्ट -१

विलक्षण प्रेम और विलक्षण कृपा

(लेखक—श्रीप्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय)

[सम्पादक—भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार]

प्रेमयोगिनी मीराँने कितने दर्दभरे स्वरमें गाया था—'हे री मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणै कोय।' वह तो श्रीकृष्णके प्रेममें पागल थी, विरह-व्यथासे व्याकुल थी और उसके आत्मीय-स्वजन अपने धर्ममें मस्त थे, वे उसके दर्दके मर्मको भला कैसे समझ सकते थे? उन्हें तो उसकी सारी हरकत ही उलटी दीखती थी और वे उसके साथ, उसके 'उलटे जीवन'को सुधारनेके लिये उसपर जुल्म ढाते थे। इसीलिये न उसने घबराकर भक्त तुलसीदाससे राय पूछी थी कि ऐसी दशामें उसे क्या करना चाहिये और उस सच्चे ज्ञानीने कितना निःसंकोच लिख भेजा था कि—'**जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥**' सनेही होनेसे क्या, यदि उसे भगवान्‌पर प्रेम नहीं, जो प्रेम-रससे अनभिज्ञ होकर प्रेमीपर अत्याचार करता है, उस एकको ही करोड़ वैरी मानकर त्याग देना चाहिये। और उपाय भी क्या है? भला ऐसे प्रेमहीन सनेहियोंके स्थूल धर्मकी रक्षाके लिये कोई भगवद्भक्त अपने अमर धर्मका कैसे त्याग कर सकता है?

वास्तवमें इस तरहके मीराँ-जैसे सच्चे भक्त दुर्लभ ही होते हैं और ऐसे भक्तोंके पावन दर्शन, चरित्र-श्रवण सब देशों और सब कालोंमें मङ्गलकारी होते हैं। सौभाग्यसे मुझे एक बार ऐसे मुसल्मान बालक भक्तके दर्शन अनायास कुछ क्षणके लिये प्राप्त हुए थे और वे क्षण मेरे जीवनके अमूल्य क्षणोंमें हैं। उन्हीं पावन क्षणोंकी कुछ झाँकी मैं अपने पाठकोंको भी देना चाहता हूँ।

अपने जीवनके प्रारम्भिक कालमें अवश्य कुछ समझ हो जानेके बाद

मैं एक तीव्र आवेग लेकर घरसे बाहर निकल पड़ा था। इच्छा थी कि सारे भारतमें घूम-घूमकर साधु-महात्माओंके दर्शन करूँगा और यदि किसीकी कृपा प्राप्त हो सकी तो अपने जीवनको धन्य बनाऊँगा। उन्हीं भ्रमणकालीन दिनोंकी बात है। कार्तिक मास था, प्रथम शीतका मधुर स्पर्श आरम्भ हो गया था। प्रफुल्ल मन, स्वस्थ शरीर और हृदयमें उद्दाम आशा लेकर उत्तरप्रदेशके तीर्थोंका भ्रमण कर रहा था। घूमते-फिरते मथुरा आया और सोचा कि दो-तीन दिन यहाँ विश्राम करके वृन्दावन चलूँगा।

पथकी सारी धूल पावन यमुनाके जलमें धोकर मानो यात्राकी सारी थकानसे मुक्त हो गया—प्रसन्नचित्त होकर चुपचाप विश्रामघाटपर बैठ गया। वहीं संध्याके समय भगवान्‌की आरती देखी। यह आरती मैंने पहले भी देखी थी, परंतु आज ....—मानो उसमें कुछ नयापन था—सात्त्विक उपासनाके साथ मानो अपूर्व शिल्प-चातुरीका समावेश था। ऐसा मैंने भारतके और किसी तीर्थमें नहीं देखा। बैठे-बैठे एक अपूर्व तन्मयताका अनुभव कर रहा था।

भीड़ धीरे-धीरे कम होने लगी। कितने ही नर-नारी आये और चले गये। कुछ प्रौढ़ व्यक्ति घाटकी सीढ़ियोंपर बैठकर संध्या-वन्दन करनेके बाद आचमन करके चले गये। कितने ही देशी-विदेशी आये और चले गये; कितनी ही मथुरावासिनी मधुरहासिनी रमणियाँ अपने आकर्षक स्वरका आनन्द बिखेरती हुई निकल गयीं। अब मैं भी वहाँसे चलनेके लिये तैयार हुआ।

घाटके पास ही रास्तेमें एक मुसल्मान खड़ा था; एकदम साधारण नहीं, कुछ-कुछ भद्र और आधुनिक ही प्रतीत होता था। उसकी कच्ची-पक्की मूँछ-दाढ़ी वैसी ही छोटी-छोटी छँटी हुई थी जैसे प्रायः उत्तर भारतके मुसल्मानोंकी देखी जाती है। धूपमें तपा हुआ उसका मुख लालिमासे उज्ज्वल था, छोटी-छोटी आँखोंकी दृष्टि काफी पैनी थी। उसके हाव-भावसे ऐसा लगता था मानो कोई खोयी हुई चीज खोज रहा हो। देखा, मुझपर भी उसकी दृष्टि निबद्ध है। उससे आँख मिलते ही मेरे अंदर कौतूहल जग उठा। धीरे-धीरे आगे बढ़कर मैं उसके सामने खड़ा हो गया। प्रौढ़ वयस् होनेपर भी उसके चेहरेपर एक भव्यता विद्यमान थी।

वही तीक्ष्ण दृष्टि—सिरसे पैरतक मेरी ओर निहारकर, अपने मुँहपर

हाथ रखकर वह कई बार खाँसा; फिर मेरी ओर देखते हुए ऐसे खड़ा हो गया मानो मुझे ही उससे बात करनी हो, गरज मेरी हो। मैंने भी बस आरम्भ कर दिया, हिंदीमें उससे पूछा, 'लगता है आप यहाँ किसीको खोज रहे हैं।' वह बोला—'जी हाँ' और इतना कहकर वह चुप हो गया। कुछ देर मौन रहकर उसने मुझसे पूछा—'आप बंगाली हैं?' उसके मुँहसे 'बंगाली' शब्द ऐसा कटु एवं विद्वेषपूर्ण प्रतीत हुआ कि सुनते ही मेरा अन्तःकरण विषाक्त हो गया, बड़ी बेचैनीका अनुभव हुआ, फिर भी मैंने धीरेसे उत्तर दे दिया—'जी हाँ।'

वह बोला—'शायद मथुरा-वृन्दावन तीरथ-यात्राके लिये आये हैं?' इसका भी उत्तर दे दिया। वह फिर बोला—'कलकत्तेसे आये हैं?' हामी भर ली। मन-ही-मन संदेह हुआ, कहीं पुलिसका आदमी तो नहीं है? इससे पूर्व मुझे इस बातका काफी अनुभव हो चुका था कि ग-संतानकी रिहाई विदेशमें भी नहीं होती—पुलिस पीछा करती ही रहती है।

वह कुछ देर मौन रहकर एक बार चारों ओर ताका और फिर कुछ भाव-भंगी करता हुआ नरम स्वरमें बोला—'साधुजी! उस बड़े फाटकके पास ही मेरा गरीबखाना है, आपसे कुछ बात करनी है, मिहरबानी करके एक बार वहाँ चलेंगे क्या?'

'गरीबखाना'—कितना विनयपूर्ण वचन है! सोचा, शायद दौलतखाना ही हो। बड़ा फाटक नजदीक ही था, इसलिये थोड़े समयमें ही उसके दौलतखानेपर जाकर जो दृश्य देखा उससे और आगे पैर बढ़ानेका उत्साह न रहा। मनुष्यके चेहरे और वेशभूषाके साथ उसके निवासस्थानका सम्बन्ध कितना विपरीत हो सकता है, वह विषमता कितनी गहरी हो सकती है यह स्वयं आँखोंसे देखे बिना कोई विश्वास नहीं कर सकता, विश्वास करनेकी बात ही नहीं। पर उस बातको जाने दें, अब मेरे मनमें कुछ खलबली मची, बोला—'यमुना-तीरपर ही क्यों न चलें, वहीं कहीं बैठकर हम बातचीत कर लेंगे।' वह मेरे मनकी बात समझ गया और तुरंत राजी हो गया। हम फिर यमुना तटपर आ गये और एक छत्तेदार चबूतरेपर बैठ गये। रेलका पुल निकट ही था, गाड़ी उसपरसे होती हुई चली गयी; वह व्यक्ति उसी ओर

ताक रहा था। मेरा चित्त अब अस्थिर हो उठा। मैं बोला, 'अब कहें न जो कुछ कहना हो।'

'हाँ कहता हूँ साधुजी! मेरा एक लड़का है, वही एकमात्र लड़का है मेरा। आज दस-बारह दिनसे लापता है।' यह सुनते ही मैं बोल उठा, 'पर मैं क्या कर सकता हूँ?' वह व्यक्ति अब मानो कुछ कातर स्वरमें बोला, 'आप सब बात सुन लें, फिर उसके बाद जो इच्छा हो कहें।' और वह अपनी कहानी सुनाने लगा।

'मेरे लड़केकी कहानी बड़ी अजीब है। उसका स्वभाव बड़ा विचित्र था। हमलोग मुसल्मान हैं, आप नहीं जान सकते, हम बादशाहकी जात हैं—सुलतान आलमके अमलसे ही दिल्लीमें हमारा बड़ा रोब-दाब रहा है, एक वक्त सारा हिंदोस्तान ही हमारे हुक्मपर चलता था। डाफराइन लाटसे हम जागीर लेकर आगरेमें बस गये—अखबारमें यह सब छपे हुए हरफोंमें दर्ज है।'

मेरे लिये यह असह्य हो गया। इस सबसे छुटकारा पानेकी आशासे मैं व्याकुल होकर प्रार्थनासूचक स्वरमें बोला—'दुहाई शाहजादा साहब, अब अपने लड़केकी बात—।'

'हाँ, हाँ, यह कहता हूँ। लेकिन ठाकुरजी! हमारे खानदानका किस्सा जाने बिना आप यह कैसे समझ सकेंगे कि कितने बड़े घरका लड़का होकर उसने कितनी बड़ी अहमकी की है? इसीलिये पहले—।' मैंने हाथ जोड़कर कहा, 'अब यदि असली बातपर आ जायँ..............।'

तब उसने फिर कहा—हाँ, वही कहता हूँ .... हमारा जो मजहब है, एक दिन सारी दुनियाको उसे कबूल करना होगा, नहीं तो किसीका उद्धार नहीं हो सकता। हम वही मुसल्मान हैं; हिंदू हमारे लिये काफिर हैं। हर एक हिंदू, वह चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, हमारे लिये बस काफिर ही है। हमारे मुल्ला उनके सायेसे अलग रहते हैं। खुदाकी मिहरबानीवाले हमारे इस मजहबकी खासियत समझकर यदि कोई काफिर भी इस मजहबको कबूल करे तो हम उसे अपने-जैसा ही बना देंगे, लेकिन काफिरके साथ हमारा दोस्ताना नहीं चल सकता ....।'

असह्य हो गया! किस मुसीबतमें आ फँसा! पर उपाय भी क्या,

सुनना ही पड़ेगा। वह तो अब अपने मजहबकी महिमा गानेमें डूब गया था और मुझे भी उसके लड़केकी अद्‌भुत कथा सुननेका कोई कौतूहल नहीं था। कुछ देर बाद, जब और न सह सका, तो झट बोल उठा—'अच्छा, आप बैठिये, मैं तो अब घर चला।' और इतना कहकर एकाएक खड़ा होकर उसे सलाम ठोंक दिया। वह तो अवाक् हो मेरी ओर देखने लगा मानो मैंने कोई बड़ा विकट अभिनय कर डाला हो। वह नरम स्वरमें बोला—'जरा बैठिये, अब महज लड़केकी ही बात कहूँगा।'

बाध्य होकर फिर बैठ गया। उसने आरम्भ किया—'आप क्या जानें, हमारे पाक मजहबके साथ हिंदुओंके बुतपरस्त मजहबकी कोई बराबरी ही नहीं हो सकती। हमारा ईमान कुरानशरीफमें ही है। उसमें लिखा है कि हिंदू कभी बहिश्तमें कदम नहीं रख सकते, उन्हें तो जहन्नुममें ही जाना पड़ेगा। इसीलिये हमारे खानदानमें लड़कोंको शुरूसे ही तालीम दी जाती है कि उसका ईमान इस मजहबमें पक्का हो जाय।' देखा, भीतर एक प्रबल रोष उसे पीड़ित कर रहा है; पर बोले बिना भी शान्ति नहीं। मैंने व्यग्रभावसे कहा—'अब सुनाइये, अपने लड़केकी बात।'

'हाँ, वही कह रहा हूँ। मेरा लड़का ....उसका नाम है दादर रहमान, वह मकतबमें पढ़ता था; दो-तीन अंग्रेजीकी किताबें भी पढ़ा था; शान्त तबीयतका था। उसे सब प्यार करते थे। वह थोड़ा शर्मीला था, अधिक बोलता-चालता नहीं था। फिर भी हम उसे बड़े अदब-कानूनके मुताबिक रखते थे—हमारे खानदानका तरीका जो यही ठहरा। मुझे यकीन था कि वह एक दिन पक्का मुसल्मान होगा। इस वक्त उसकी उम्र तकरीबन सोलह सालकी होगी। एक दिन उसने अपने माँसे एक बेढब सवाल कर दिया। क्या कहा उसने, जानते हैं?'—इतना कहकर आँखें फाड़-फाड़कर वह मेरे मुँहकी ओर ताकने लगा, जैसे यह देख रहा हो कि मैं भी अवाक् हो रहा हूँ या नहीं। मैंने कहा, 'मैं कैसे जान सकता हूँ? मैं तो उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था?'

'उसने क्या कहा, जानते हैं?' वह बोला—'अम्मी! तुमलोग हिंदुओंको काफिर क्यों कहती हो? बोलो, आज मुझे बताना ही होगा।' माँ

तो हुई औरतकी जाति, वह कुछ भी बोल न सकी। उसने रातको मुझे बताया कि लड़केने यह बात पूछ थी। सुनते ही मेरे बदनमें आग लग गयी; सीधे उसका कान पकड़ बाहर खींच लाया और तड़ातड़ बेंत लगाते-लगाते बोला, 'जो हमारे पाक इस्लाम मजहबपर ईमान नहीं लाते, बुतोंको पूजते हैं, उन्हें काफिर कहते हैं, यह कुरानमें लिखा है, तुम फिर कभी यह बात पूछोगे? हिंदुओंका नाम लोगे?' उसके मुँहसे एक लफ्ज न निकला; मेरी बातका कोई जवाब ही उसने नहीं दिया। 'मेरा साँस फूल गया।' कहकर वह हाँफने लगा। फिर बोला, 'हमें खुदाताआलाने पैदा किया है' हमारे लड़कोंके ऐसी बातें क्यों?

'खैर उसे जाने दें। उस दिनसे लड़केने फिर कोई बात नहीं पूछी। उसने एक संजीदा रवैया अख्तियार कर लिया। किसीसे कुछ न बोलते हुए चुपचाप दिन गुजारने लगा। मैंने सोचा, सख्त सलूक बरतनेसे उसे अक्ल आ गयी है।'

'कासिम नामका मेरा एक भतीजा है, उसीके साथ पढ़ता था। कासिम अभीसे पाँच बार नामाज पढ़ता है, जो हम भी नहीं कर सकते। वह बहुत ऊँचे किस्मका मुसल्मान है; पीछे वह एक नामजादा आदमी होगा, ऐसा हम सबको यकीन है। उस वाकयाके कुछ दिन बाद कासिमने एक दिन शामकी नमाजके बाद चोरी-चोरी आकर मुझसे कहा, 'चचाजान! दादर तो एकदम काफिर हो गया है। हिंदुओंके मंदिरमें जो देवता हैं उनकी ओर देखा करता है, दरवाजेके पास खड़ा होकर चुपचाप देखता रहता है, फिर मुँह-ही-मुँह बुदबुदाकर न जाने क्या बोलता है, रोता भी है, उसकी आँखोंसे पानी बहने लगता है। मैंने यह सब खुद देखा है।'

मुसल्मान-प्रवर जरा दम लेकर फिर बोलने लगे—'कासिमके मुँहसे यह सुनकर मैं लड़केको लेकर दरगाह शरीफ गया, जहाँ हमारे मुल्ला, हाफिज, हाकिम रहते हैं। उन्होंने कासिमसे सब बातें कुरेद-कुरेदकर पूछीं। जो-जो उसने ठीक अपनी आँखोंसे देखा था, सब कुछ कासिमने बताया। उसने कहा, 'परसों जब हम एक साथ मकतबसे आ रहे थे तो उसने मुझसे कहा तुम घर जाओ, मैं जरा ठहरकर आऊँगा। मैं जानता था कि रास्तेमें जो काफिर हिंदुओंका मन्दिर है वहीं वह जायेगा और इसीलिये मुझे भगाना चाहता था।

मैंने कहा कि, 'मैं तुझे वहाँ नहीं जाने दूँगा, वहाँ जानेसे तू काफिर हो जायगा।' 'यह सुनकर वह बोला, 'भाई! तूने उस मन्दिरके देवता किशनजी और उनकी बीबीको देखा है?' मैंने कहा, 'वह सब क्या हमारे देखनेकी चीज है रे? हम तो ईमानदार पक्के मुसल्मान हैं।' दादरने मेरी बातपर जरा भी कान नहीं दिया और ही बहुत-सी बातें बोलने लगा। अन्तमें बोला, 'खुदाने ही तो सबको पैदा किया है, फिर उसकी दुनियामें हमें जो अच्छा लगेगा उसे हम क्यों नहीं देखेंगे? इसमें तो किसीका कोई नुकसान नहीं। इसमें गुनाह क्या है, अगर मुझे अच्छा लगता है तो देखनेमें कसूर क्या है?'

"उसकी यह बात सुनकर मुझे गुस्सा आ गया। मैंने दादरसे कहा, 'तू तो जरूर काफिर हो गया है। हमारा अल्लाह तुझपर खफा होगा। तुझे काफिरोंके साथ जहन्नुममें भेजेगा।' मेरी बातका उसपर कोई असर नहीं हुआ। सिर्फ इतना बोला, 'खुदा तो सब देखता है; मैंने अगर कोई कसूर नहीं किया तो वह क्यों मेरे ऊपर खफा होगा?' हाँ, उसने इतना और कहा था कि 'क्या हमारे-जैसे छोटे कमजोर आदमियोंकी तरह अल्लाहमें भी गुस्सा-गिला है? मुहब्बत हुए बिना क्या अल्लाहके पास जाया जा सकता है? जहाँ मुहब्बत है वहाँ गुस्सा कभी रह सकता है?"

हाफिजने ध्यानसे सब कहानी सुनी और वह बोले—'जरूर काफिर पंडितोंके लड़के इसके पीछे लगे हैं और यह सब काफिरी सीख है।' कासिम बोला, 'पण्डितोंके लड़कोंके साथ तो उसे मैंने कभी नहीं देखा। इसके सिवा हम तो कभी उनके साथ नहीं मिलते-जुलते और न वे ही हमारे साथ मिलते-जुलते हैं।' यह सब बात सुनकर हाफिज मुल्ला फर्रूखसियारके साथ मशविरा करने गये। हम घर चले आये। आकर देखा, दादर घरमें गुमसुम बैठा था। उनका चेहरा देखकर ऐसा बिल्कुल नहीं लगता था कि उसके मनमें कोई पाप या गुनाह है। यह इतना शैतान है, अपना मतलब इस तरह छिपाकर रखता है! कौन उसका सलाहकार है, कौन काफिरका बच्चा उसे यह सब सिखाता-पढ़ाता है, यह सब उसके मुँहसे निकलवानेके लिये उस रात मैंने उसे इतना मारा कि वह बेहोश हो गया लेकिन फिर भी उसने कुछ भी नहीं बताया।

यहाँतक सुनते-सुनते मन ग्लानिसे भर गया। इनकी अज्ञ बुद्धि कितनी नीचे जा सकती है, कैसे ये सत्य वस्तुको दबाकर मिथ्याकी इमारत खड़ी कर सकते हैं—यही सब सोचकर मनमें बड़ी उदासी, तिक्तता और विरक्ति भर गयी। सोचा, बालकके दैवानुग्रहजनित प्रेम-धर्मके विषयमें उसका पिता या समाज अनभिज्ञ है। सहज दृष्टिसे जो वस्तु देखी जा सकती है उसे वे नहीं देखेंगे; देखेंगे उसे जो वास्तवमें नहीं है, अपनी-अपनी ईर्ष्या-द्वेषजनित कल्पनाकी आँखोंसे। मैं समझ गया कि उन्हें यह संदेह है कि किसी पण्डित या पण्डितोंके लड़कोंने उनके धर्म-प्रवण मुसल्मान बालकको सरल पाकर बहकाने और हिंदू बनानेकी चेष्टा की है। एक बात कहे बिना न रह सका, यद्यपि जानता था कि वह विफल ही होगी। पूछा—'मिर्जासाहब, आपकी आयु तो पचासके ऊपर होगी।'

'हाँ, इस रमजानमें पचपन हो गयी है।'

'अच्छा, तो क्या आपने कभी ऐसा देखा है कि किसी हिंदूने किसी मुसल्मानको हिंदू बनानेकी चेष्टा की है?'

वह सिर हिलाकर बोला, 'पहले तो कभी नहीं देखा था, लेकिन अब 'शुद्धि' जो शुरू हो गयी है।'

'वह तो असली मुसल्मानोंके लिये नहीं है, बल्कि जो पहले हिंदू थे और किसी कारणसे जाति या समाजसे बाहर हो गये थे या मुसल्मान हो गये थे उनके लिये है। उनमेंसे यदि कोई फिर अपने धर्ममें आना चाहे तो......।'

'सो तो ठीक है, बाहरसे ऐसी बातें बनाकर ही लोगोंको बतायी जाती हैं। अंदर-अंदर उनका क्या मतलब है यह कौन कह सकता है? हाँ, तो भी सच्चे मुसल्मानको तो वे नहीं ही बदल सकेंगे, यह ठीक ही है। अभी छोटे-छोटे लड़कोंके ऊपर, जिनका दिल हलका है, आजमाइश करके देख रहे हैं शायद ....।'

इसके ऊपर कुछ कहनेकी गुंजाइश तो नहीं थी, फिर भी मैंने कहा—'मिर्जासाहब! आपने क्या नहीं सुना है कि धर्मान्तर ग्रहण करनेमें हिंदू विश्वास नहीं करते? हिंदुओंकी तो धारणा ही यह है कि हिंदू होकर जन्म

लिये बिना हिंदू नहीं हुआ जा सकता।'

मिर्जासाहब बोले—'हाँ, वह तो सुना है, लेकिन ....।'

यह 'लेकिन' ही तो सर्वनाशका कारण होता है। अब देखा कि वे कुछ आर्द्र हो गये हैं। करुण नेत्रोंसे ताकते हुए बोले, 'उसके बादकी बात भी जरा सुन लीजिये। जिस दिन वह लापता हुआ उससे दो-एक दिन पहलेसे वह न जाने कैसा हो गया था। उसकी माँने मुझसे कहा कि 'तुम लड़केकी तरफ देखते नहीं? मुझे लगता है कि किसी देवताने उसे धर दबाया है, नहीं तो उसकी आँखें हर वक्त लाल क्यों रहती हैं? ऐसा लगता है मानों उनमें पानी भरा हुआ है। किसीके साथ बात करते समय उसकी आँखोंसे झर-झर पानी झरने लगता है। कोई उसके पास जाय वह वहाँसे दूर सरक जाता है, हमेशा अकेलेमें ही रहना चाहता है। यह सब देखकर मुझे तो डर लगता है।' उसकी माँकी यह बात सुनकर मैं उसी रात लालटेन लेकर उसके बिस्तरको देखने गया, देखा, वह वहाँ था ही नहीं। कहाँ गया? *** और वह एक ही जगह रहते थे। देखा, **** वहीं सोया हुआ था। उसे आवाज देकर उठाया और पूछा तो उसने कुछ सोचकर कहा कि मैं कुछ नहीं जानता, न जाने कब उठकर चला गया। ऐसा तो वह रोज ही करता है। मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गया तो देखा कि एक कुएँकी मेड़पर अँधेरेमें चुपचाप बैठा है। मैंने पकड़कर उसे बेदम मारना शुरू कर दिया। मारकी चोटसे भूततक भाग जाते हैं, यह हम सब खूब अच्छी तरह जानते हैं। किंतु इतनी सख्त चोटोंके पड़नेपर भी उसपर कुछ असर न हुआ, वह शैतान शैतान ही बना रहा। हैरानीकी बात यह है कि इतनी मार खाकर उसने चूँतक न किया, गुस्सेकी एक मामूली-सी बात भी उसके मुँहसे नहीं निकली। उसके बाद जब एक दिन अपनी बीबीके कहनेसे भौलालीसे एक ओझाको बुला लाया तो फिर वह भाग गया। जानेसे पहले **** कह गया कि 'मेरी उम्मीद छोड़ दो, लाड़ली मुझे बुलाती है, मैं एकदम काफिर हो गया हूँ।'

'उस दिनसे उसका कोई पता नहीं; मैंने लेकिन उम्मीद बिल्कुल नहीं छोड़ी है। आज दो हफ्ते होनेको आये, रोज एक बार इन सब जगहोंपर घूम-घूमकर उसे ढूँढ़ता हूँ। एक इतने बड़े घरका लड़का आखिरमें काफिर

हो जाय यह कैसे सहा जा सकता है?'

मैंने पूछा—'तो आप मुझे क्या करनेको कहते हैं?'

मिर्जा साहब बोले—'मेरा वही एक लड़का है, मैं अब भी उसे लौटा लाना चाहता हूँ। आप जब घाटपर बैठे थे तभीसे आपको देख रहा था। उसके बाद जब आप उठकर आये तो ऐसा लगा मानो आपके जरिये उसका पता लग सकता है।'

'परंतु आपका लड़का तो अपनी इच्छासे काफिर हो ही गया है, इतनी यातना मिलनेपर भी जब वह बदल नहीं सका तो उसका पता मिलनेपर भी क्या आप उसे घर ले जा सकेंगे?'

उत्तरमें उसने कहा—'वह अभी नादान बच्चा है, बिना-समझे-बूझे एक काम कर बैठा है। उसे उसकी गलती समझाऊँगा, हमारी दरगाहों जो बड़े-बड़े फकीर, औलिया हैं उनके पास ले जाऊँगा, उनकी शक्तिके असरसे उसकी रवैया बदल जायगी, मुझे पक्का यकीन है।'

'अच्छा, यदि कभी कहीं उसका पता मिल गया तो मैं आपको खबर कर दूँगा।' उसने मुझे अपना पता दे दिया। अगले दिन मैं मथुरासे चल पड़ा।

* * * *

वृन्दावन मेरा सुपरिचित और अति प्रिय स्थान है। अनेक बार वहाँ आ-जा चुका हूँ। राधाबागके ब्रह्मचारी आश्रममें ही मैं बराबर ठहरा करता हूँ। वहाँ स्वामी केशवानन्दके आश्रममें मैंने लंबा समय बिताया है। वहीं इस बार भी ठहरा। दूसरे दिन बादलोंसे भरी साँझके समय मैं घूमनेके लिये यमुनातटकी ओर गया। वहाँ वनचारी साधुओंके आश्रम हैं। उनके आसपास ही घूम रहा था। सामने यमुना फैली हुई थी, उसके उस पार बहुत दूरतक उसकी तट-भूमि फैली थी, बीच-बचीमें दो-एक पेड़ थे, उसके पीछे सुदूर प्रान्ततक वृक्ष-श्रेणीकी गाढ़ नीलाभ रेखा दिग्दिगन्त तक व्याप्त हो आकाशके साथ मिल गयी थी।

जहाँ बैठा था, उससे कुछ दूरीपर तीन अपूर्व विशाल वृक्ष थे। सुन्दर सुपरिष्कृत, तृणहीन भूमिपर लंबे-लंबे तीन वृक्षोंके मूल इस प्रकार समान अन्तरपर विद्यमान थे कि उनके बीच एक सुन्दर त्रिकोण क्षेत्रकी सृष्टि हो

गयी थी। प्रकृतिद्वारा रचित ऐसा क्षेत्र प्राय: देखनेको नहीं मिलता, यह मानो किसी योगीका आसन हो। वह क्षेत्र उस समय खाली नहीं था। देखा, उसके भीतर कौपीनधारी एक मूर्ति अद्भुत भंगिमाके साथ बैठी है। वह भंगिमा ऐसी चित्ताकर्षक थी कि मेरी दृष्टि बलपूर्वक उसी ओर खिंची रह गयी। प्रथम दृष्टिमें ही ऐसा लगा कि वह मूर्ति किसी वैष्णव एवं योगीकी है, उसका बैठनेका ढंग योगी-जैसा ही था।

मेरी प्रकृति बचपनसे ही कुछ ऐसी बन गयी है कि किसी साधुकी मूर्ति सामने आते ही उधर सहज ही आकर्षित हो जाती है। विशेषकर शान्त-धीर प्रकृतिका कोई साधु हो तब तो उससे परिचय प्राप्त करनेके लिये मन-प्राण अधीर हो उठते हैं। लगता है मानो वे मेरे जन्म-जन्मान्तरके अपने परिचित हों। इसी कारण इस बार भी मैं अपनी जगहपर स्थिर न बैठ सका, उठ पड़ा और निमिषमात्रमें उस स्थानपर जा पहुँचा। वहाँ देखी एक अद्भुत बालकमूर्ति—स्वास्थ्यपूर्ण, सुडौल शरीर, उज्ज्वल गौर वर्ण, कौपीनमात्र वस्त्र। लगा—जैसे व्यासपुत्र परमहंस शुकदेवकी ही मूर्ति देख रहा होऊँ। वह रूप देखकर मैं निर्वाक्, अपलक हो गया। चित्रकारपर रूपका प्रभाव बड़ा ही तीव्र होता है यह सभी जानते हैं। रूप बाह्य होनेपर भी अन्तरकी सम्पदाने उस रूपको ईश्वरीय लावण्यसे मण्डित कर रक्खा था; वह लावण्य और कुछ नहीं, ज्योतिका ही दूसरा नाम है। वास्तवमें यह ज्योति ही चित्रकारके लिये काम्य है।

उन दिनों कुछ ठंड थी, किंतु बालकके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था, शायद उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। किंतु मेरी बुद्धि तो स्थूल देहगत बुद्धि ठहरी, उसका शीतबोध अपने ऊपर आरोपितकर अपने शरीरका गरम कपड़ा उसे ओढ़ा दिया। उसकी अपलक दृष्टि यमुनाकी ओर निबद्ध थी, मुँहमें कोई शब्द नहीं। सोचा, वनचारी वैरागियोंका कोई बालक भक्त होगा। साधु-सम्प्रदायमें बालक ब्रह्मचारी बहुतेरे देखे हैं, पर ऐसी आँखें बहुत कम देखनेमें आती हैं। पद्मपलाश नेत्रोंकी बात हम सबने सुनी होगी—वे नेत्र अरुणवर्ण थे, उनमें जल झलमल कर रहा था, मानो अभी-अभी झर पड़ेगा। ऐसी किशोर साधुमूर्ति मैंने जीवनमें प्रथम बार ही देखी थी।

मथुरामें आनेके बाद अबतक उस भद्र मुसल्मानके पुत्र दादर रहमानकी बात ही मेरे मनमें बार-बार आया करती थी। उसके अन्तरमें प्रेम-धर्मकी स्फुरणाकी बात, उसका बिना क्रोध किये इतना अत्याचार सहना, फिर दृढ़-संकल्प बालकका गृहत्याग, जाने कहाँ अन्तर्धान हो जाना आदि-आदि बातें बार-बार आकर मनमें हलचल पैदा करती थीं। किंतु जैसे ही इस मूर्तिको सम्मुख देखा वह बातें काफूर हो गयीं, इस मूर्तिपर चित्त तन्मय हो गया, प्रश्न करूँ या न करूँ यह सोचनेकी भी प्रवृत्ति नहीं रही। बैठे-बैठे उसे ही देखनेमें मग्न हो गया।

इसी समय एक व्रजवासिनी घाघरा, चोली, ओढ़नी सब कुछ नीले रंगका धारण किये हुए आ उपस्थित हुई। उसके हाथमें एक थाल कपड़ेसे ढका था, निश्चय ही उसमें कुछ खाद्य पदार्थ था; दूसरे हाथमें एक साफ झकझक करते हुए लोटेमें कुछ पेय था। अति कमनीय था उसका मुखमण्डल; अपूर्व भाव-भंगीके साथ खड़ी होकर उसने धीरे-धीरे हाथकी चीजें उस किशोरके सामने रख दीं। वह बोली—'दुलाल मेरे, अब कुछ खा लो तो, मैं अभी तुम्हें खिलाकर घर जाऊँगी, फिर वहाँका काम समाप्त कर संध्या-समय पुनः यहाँ आऊँगी और तुम्हें वहाँ ले चलूँगी।'

यह सब मधुर व्रजभाषामें कहकर वह उसके मुखकी ओर स्नेहभरी आँखोंसे देखने लगी। मैं वहाँ एक अपरिचित व्यक्ति भी उपस्थित हूँ—इस ओर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं था; मानो उसके सामने उस किशोरके सिवा और कोई न हो। उसकी बातें इतनी मधुर थीं कि भाषाके साथ कण्ठस्वर मिलकर एक अपूर्व संगीतकी सृष्टि कर रहा था।

साधुमें किंतु कोई भावान्तर नहीं हुआ; वह जैसे अपलक यमुनाकी ओर ताक रहा था वैसे ही ताकता रहा। यह देख उस व्रजाङ्गनाने व्याकुल-भावसे 'मेरे लाल' कहते हुए उसके चिबुकका स्पर्श किया। उस समय वह ध्यानस्थ किशोर तनिक चौंका, किंतु उसके नेत्र वैसे ही अपलक बने रहे।

फिर एक बार उस नवागताके मुँहकी ओर देखकर वह बोला, 'मम्मा, मुझे ले चलो, ले चलो,' और ऐसा कहते-कहते उठने लगा। जननीकी तरह स्नेहसे हाथ पकड़कर मधुर भाषामें वह व्रजनारी बोली, 'अभी नहीं मेरे

लाल! अभी कुछ खा लो, उसके बाद संध्या-समय आकर तुम्हें ले जाऊँगी।' इतना कहकर उसने थालमेंसे एक ग्रास उठाकर उसके मुँहमें डाल दिया। दो-एक ग्रास ही उसने खाया, बहुत चेष्टा करनेपर भी उसे और अधिक न खिलाया जा सका। अन्तमें थोड़ा-सा दूध पीकर वह किशोर फिर समाहित-चित्त होकर यमुनाके तटवर्ती वनकी ओर देखने लगा। अब मेरी ओर ताककर वह व्रजबाला विनतीभरे करुण स्वरमें बोली—'बाबा! यदि तुम कुछ देर यहीं रहो तो कोई हर्ज है?'

मेरे उत्तरसे वह प्रसन्न हुई, किंतु फिर उस बालककी ओर देखकर अश्रुपूर्ण नयनोंसे बोली—'कल ही मुझे लाड़लीजीने कह दिया था कि उसका सब समय ध्यान चलता रहता है, होश नहीं रहता, उसे खिला दो, नहीं तो उसका शरीर नहीं टिकेगा। दस-बारह दिनसे कुछ नहीं खाया, थोड़ा-सा दूध, बस। इससे क्या शरीर रह सकता है?' उसके बाद चकित हरिणीकी तरह घूमकर उसने किशोरको देखा, कहा—'क्या करूँ? अच्छा मेरे गोपाल! तुम यहीं रहो। मैं घर जाती हूँ। मुझे तो अभी घरका काम करना है। साँझको आकर तुम्हें ले जाऊँगी। अच्छा!'

किशोर निर्वाक् समाहितचित्त अपने आसनपर बैठा रहा। व्रजवासिनीका अन्तर्धान भी कुछ विचित्र-सा ही लगा। जब मैं उस ध्यानमग्न योगी-मूर्तिकी ओर देख रहा था, तब जरा मुड़कर उसे एक हाथमें लोटा और दूसरे हाथमें थाल लेकर जाते हुए देखा था। उसके बाद वह आगे बढ़ते-बढ़ते न जाने कहाँ विलीन हो गयी। वहाँ कोई पेड़ अथवा और किसी प्रकारकी आड़ नहीं थी, यह मुझे पूर्ण स्मरण है।

लड़कीका आना-जाना और इस थोड़ेसे समयके लिये रहना-इस सबके भीतर जो कुछ देखा उससे लगा कि वृन्दावनके यमुना-तटपर इस किशोर वैरागीको केन्द्र करके एक महान् आनन्दमय अपार्थिव खेल चल रहा है।

खैर, हमारी समझ भी कितनी। भक्तिधर्म, प्रेमधर्म आदिकी बातें साधु-महात्माओंके मुँहसे हम सुनते रहते हैं—कभी-कभी मनमें यह अभिमान भी होता है कि हम उसका तात्पर्य समझ गये, परंतु भगवान् ही

जानते हैं कि उसे समझने योग्य यथार्थ बुद्धि हममें कितनी है! यह सब देख-समझकर ही अब यह कहता हूँ कि इस स्थानमें सब कुछ अद्‌भुत है! इस बार मथुरामें पदार्पण करनेके दिनसे ही सब कुछ अद्‌भुत, अपूर्व और अप्रत्याशित अनुभव हो रहा था। यह सब ऐसा आकर्षक था कि मैं स्तम्भित हो रहा था।

अब साँझ होनेको आ गयी। यमुना-तीरपर खूब हवा चल रही थी। परंतु योगीकी ओर देखनेपर ऐसा लगता था मानो आकाश-बाकाशका कुछ भी कार्य उसके लिये इन्द्रियगोचर नहीं था। मेरी बात करनेकी प्रबल इच्छा हो रही थी। सोचा, क्या पूछनेपर कुछ नहीं बोलेगा? 'हरि हरि' शब्दका उच्चारण इस तरह करने लगा जिसमें उसे सुनायी दे जाय। मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण हुई; उसने मेरी ओर देखा। मैंने कहा, 'बाबाजी! तुम्हें क्या कष्ट है?'

वह धीरे-धीरे बोला—'कष्ट! मुझे तो कोई कष्ट नहीं-मैं तो वृन्दावनमें हूँ—जब मैं मथुरामें अपने घरमें था, माँ, बाप, भाई सब मुझे न समझ मुझे कितना मारते थे—'मैं उनके मनमाफिक नहीं हो सका इसलिये ....' आह! अब उस बातकी जरूरत नहीं।' जरा रुककर फिर बोला—'वे यह नहीं जानते कि ईमान क्या चीज है, इसीसे उन्हें डर था कि मेरा ईमान बरबाद हो जायेगा, मैं काफिर हो जाऊँगा, 'वही तो लाड़ली, वही तो लाड़ली, वही जो कन्हइया' यह कहते-कहते उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू झरने लगा। तनिक रुककर फिर बोला—'कितनी मेहरबानी, गोविन्दजी शीरीराधाकी-राध-रा-आह', बस और मुँहसे कुछ न निकला, धीरे-धीरे ऐसी अवस्था हो गयी जैसे संज्ञाशून्य होनेपर होती है। उसके नेत्र वैसे ही अपलक थे। ऐसी अस्वाभाविक आँखें थीं कि उन्हें देखकर डर लगता था। मैं बस देखे जा रहा था। थोड़ी देर बाद वह बोला—'दोस्त! तुम जानते हो राधाकुण्ड कहाँ है?' और व्याकुल भावसे मेरी ओर ताकने लगा।

मैं बोला—'जानता हूँ।' इतना सुनते ही महान् उत्साहके साथ बोला—'तो मुझे वहाँ ले चलोगे?' फिर न जाने क्या उसके मनमें आया, कुछ सोचने-जैसा भाव बनाकर तुरत बोल उठा—'ना, ना, वहाँ तो तुम जा ही नहीं सकते। व्रजरानीकी दया हुए बिना तो वहाँ कोई जा ही नहीं सकता,

मुझे चम्पा सखी ही ले जायेगी, उसके आनेमें देर है न?' रुक-रुककर, धीरे-धीरे अतीव मृदु स्वरमें ही उसने पूरा किया।

'राधाकुण्डकी कुछ बात सुनाओगे क्या? मुझे सुनकर आनन्द होता है।' मेरे मुँहसे इतना सुनते ही उसके मुख-मण्डलपर गहरे आनन्दकी पुलक, साथ ही उसके शरीरमें एक अनिर्वचनीय सिहरनकी तरङ्ग खेल गयी। उसके चेहरेपर एक दिव्य ज्योति फूट पड़ी जिसका वर्णन करना असम्भव है।

'क्या कहूँ? वहाँका आसमान मुहब्बतसे भरा हुआ है, मुहब्बतकी ही हवा चलती है, वह क्या कहनेकी बात है साधुजी? जहाँ सखा-सखी इस तरह मिल-जुलकर घूमते-फिरते हैं मानो आनन्दसे नाचते हों। उनकी बातें, गाना, हर एक सुर ऐसा है कि कानमें पड़ते ही बेहोश कर देता है दोस्त। थोड़ी देर भी वहाँ रहनेपर आदमी पागल हो जाता है। आ हा।'

कुछ क्षण स्थिर, समाहित रहा और फिर बोला—'वहाँ क्या रौनक है, उनका चेहरा अगर देखते संतजी, ऐसी मूरत है, बस, बहिश्तका रूप; उनके पाँवोंमें पायलकी आवाज कितनी तेज और मधुर है—आह! मेरे कृषनजी, मेरे ....मेरी जिंदगी कामयाब ....।' इतना कह वह आगे न बोल सका। मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि अतीव मृदु स्वरमें वह फिर बोला—'वंशीपीठमें बैठे हुए उनकी बाँसुरी सुनते ही बाबाजी! वह तान .... जिंदा सुर ....जैसे छातीमें पैठ जाता है। मैं जाऊँगा, वहाँ जाऊँगा ....फिर वापस नहीं आऊँगा, नहीं ....।' झर-झर अश्रुजल झरने लगा, वह निर्वाक् हो गया।

उसके सांनिध्यमें आनन्दकी अतिशयतासे मेरी भी चैतन्यलोप-जैसी अवस्था हो गयी। किंतु मेरी वह अवस्था दीर्घकालतक नहीं रही। उस किशोर योगीकी प्रत्यक्षदर्शी शक्तिके लिये सब कुछ जीवन्त सत्यसे ओतप्रोत था। भला उसका इतना मर्मस्पर्शी वर्णन सुनकर भी कौन ऐसा पशु होगा जो वहाँ स्वयं जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी तीव्र लालसासे अभिभूत न हो जाय। मेरे मनमें उत्तरोत्तर लोभ बढ़ने लगा। मैं पुनः 'हरि-हरि' उच्चारण करने लगा। जैसे ही देखा कि उसकी अवस्था कुछ-कुछ बहिर्मुखी हो रही है, मैं बोल उठा, 'बाबाजी! तुम्हारे-जैसा सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं होता। मुझपर जरा

दया करोगे? मुझे भी कुछ दिखाओगे?'

यह सुनकर उसे पूरा बाह्य ज्ञान हो गया, बोला—'आह! मेरे दोस्त! क्या मेरे लिये यह मुमकिन है? मुझमें क्या ताकत है? वहाँ तो चम्पा सखी ही तुम्हें ले जा सकती है। वही मेरी गुरु है, वही मेरी आँख है, ...उसके बिना तो मैं अपने-आप किसी तरह भी नहीं जा सकूँगा।'

इसी समय दूर चम्पाकी मूर्ति दिखायी दी। देखते ही वह किशोर 'अब जाऊँगा, देखूँगा, श्यामसुन्दर, राधका रानी ....' कहता-कहता मानो स्थिर हो गया, उसके नेत्र स्थिर और विस्फारित हो गये, आगे कुछ न बोल सका, एकदम भावाविष्ट अवस्था हो गयी।

इतनेमें चम्पा पास आ गयी। उसका रूप देखकर मैं स्तम्भित हो गया। यह तो व्रजनारी नहीं, जिसने मुझे यहाँ रहनेके लिये कहा था, वेषभूषा भी तो वह नहीं? यह तो एक अपूर्व ही वेष था, अबतक किसीको भी ऐसी पोशाकमें नहीं देखा था। सब कुछ अत्यन्त पतला, इतना हल्का मानो उड़ रहा हो, स्थूल जरा भी न हो। उसकी अपूर्व गति एक मनोहर सौन्दर्यकी सृष्टि कर रही थी।

बालकको स्पर्श करते ही वह उठा खड़ा हुआ। निर्वाक् चम्पा आगे-आगे चल रही थी और उसके पीछे-पीछे वैरागी किशोर। धीरे-धीरे मेरी आँखोंके सम्मुख ही वे दोनों अन्तर्धान हो गये। एक विलक्षण आच्छन्न भावसे जड़ीभूत होकर मैं बहुत देरतक वहीं बैठा रहा।

दूसरे दिन संध्यासे कुछ पूर्व फिर वहाँ गया, जहाँ यमुनातटपर तीन वृक्षोंके बीच त्रिकोण क्षेत्रमें उस किशोर वैरागीका आसन था। आज वह आसन शून्य था—वहाँ कोई न था। उसके बापको तो अब खबर देनेका कोई प्रश्न ही नहीं था। पहले दिनकी अपूर्व अलौकिक लीलाको ही स्मरण करता हुआ, आश्चर्यपूर्ण आनन्दकी लहरोंमें हिलोरें खाता हुआ वापस आ गया।

(कल्याण वर्ष ३९। १२। १३७९)

परिशिष्ट—२

पाँच पगडंडियाँ

(१)

(वङ्गभाषा)

श्रीश्रीगुरवे नमः

संसारे जदि नाहि पाइ साड़ा,
तुमि त आमार रहिबे।
बहिबारे जदि नाहिं पाइ भार,
तुमि त, बन्धु! बहिबे।

कलुष आमार, दीनता आमार,
तोमारे आघात करे शतबार,
आर केह जदि ना पारे सहिते,
तुमि त, बन्धु! सहिबे।

जाक्, छिंड़े जाक् मोर फूल-माला,
थाक्, पड़े थाक् भरा फूल-डाला,
हबे ना विफल मोर फूल-तोला,
तुमि त चरणे लइबे।

दुःखेरे आमि डरिब ना आर,
कण्टक होक् कण्ठेर हार,
जानि तुमि मोरे करिबे अमल,
जतइ अनले दहिबे।

—ज्योतिन्द्र

वैशाख १३४६,
कलकत्ता बराहनगर पाटबाड़ी आश्रमके श्रीभागवताचार्यके सेवा-मन्दिरके द्वारसे उद्धृत

(हिन्दी अनुवाद)

श्रीश्रीगुरवे नमः

भले पुकारूँ, पर न जगतसे उत्तर पाऊँ,
तुम तो मेरे स्वजन रहोगे।
मिले न कोई मेरा भार उठानेवाला,
तुम तो उसको वहन करोगे।

मेरा कलुष कराल, दीनता दारुण-दुस्तर,
करें प्रहारोंकी बौछार तुम्हारे ऊपर;
और दूसरा कोई उसको सहे न चाहे,
तुम तो निश्चय, बन्धु! सहोगे।

छिन्न-भिन्न हो जाय सुमनकी माला मेरी,
डलियामें रह जाय धरी फूलोंकी ढेरी;
पर न विफल होगा मेरा फूलोंका चुनना,
तुम चरणोंमें ले ही लोगे।

दुःखोंसे अब नहीं लगेगा मुझे तनिक डर,
काँटोंका हो हार भले ही मेरे उरपर;
मुझे विदित है—तुम मुझको निर्मल कर दोगे,
जितना ज्वालामें झोंकोगे।

(२)
हीरेकी खराद

(लेखक—श्रीकेशवनारायणजी अग्रवाल)
[सम्पादक—भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार]

हीरा भूमिपर पड़ा है—प्रकृति माताकी गोदसे निकला, धूलमें लिपटा भद्दे बेडौल अङ्गोंवाला हीरा भूमिपर पड़ा है। समीपसे निकलनेवालोंसे तिरस्कृत, बालकोंसे ठुकराया हुआ, उड़ती हुई धूलका आश्रयदाता हीरा आश्रयविहीन भूमिपर पड़ा है।

हीरोंकी खोजमें विचरते हुए हीरेन्द्र उधरसे निकलते हैं। हीरेका एक नन्हा-सा किनारा, जो दैवयोगसे धूलसे सुरक्षित बचा था, सूर्यदेवकी किरणके स्पर्शसे चमक उठता है—साथ ही हीरेन्द्रके नेत्र आनन्दसे चमक उठते हैं। हीरेन्द्र हीरेको हाथमें उठा लेते हैं।

"तुम तो हीरक हो—यहाँ कैसे पड़े हो?"

"आह! तुमने मुझे पहचान लिया?"

"राजाके मुकुटपर चढ़ोगे?"

"वहाँ कौन पहुँचायेगा मुझे?"

"मैं; परन्तु क्या तुम अपना हृदय खोलने दोगे?"

"कैसे?"

"खरादपर चढ़ाकर।"

"क्या होगा?"

"तुम्हारी धूल-मिट्टी खरोंचकर फेंक दूँगा।"

"तब तो मैं स्वच्छ हो जाऊँगा।"

"तुम्हारे विकृत बेडौल अङ्ग काटकर गिरा दूँगा।"

"ओह! बड़ी पीड़ा होगी।"

"अभी तुम्हारा हृदय एक द्वारसे प्रकाश उगलता है—"

"फिर ?"

"फिर हजार द्वारसे प्रभा छिटकायेगा।"

"ओह! तब तो मैं प्रकाशपुञ्ज हो जाऊँगा।"

"वह तो तुम्हारा प्रकृतिदत्त अधिकार है।"

"बहुत पीड़ा तो न होगी?"

"राजाके मुकुटपर चढ़ना सहज नहीं है।"

"अच्छा, तो ले चलो।"

"सब सहनेको प्रस्तुत हो?"

"हाँ—चलो।"

खरादपर हीरा चढ़ता है। खराद धीरे-धीरे चलती है, धूल-मिट्टी झड़कर गिरने लगती है। हीरा सुख अनुभव करता है। हीरा नग्न रूपमें हीरेन्द्रके सामने प्रकट होता है। हीरेन्द्र एक दृष्टिमें हीरेकी नोकें और भद्दापन देख लेते हैं।

खराद तेजीसे चल पड़ती है। खरादकी रगड़से चिनगारियाँ उठती हैं। हीरा सिहर उठता है। हीरा खराद रोकनेको कहता है, परंतु खराद नहीं रुकती। पहलू बदल-बदलकर रगड़ें लगती हैं। हीरा गिड़गिड़ाता है—चिरौरी करता है। खराद रुकती है और हीरा कोमल स्पर्शका अनुभव करता है। खरादपरसे हीरा उतरकर हीरेन्द्रके हाथपर आ बैठता है।

"अब तो मैं पहलेसे बहुत चमकदार हूँ!"

"हाँ।"

"तो चलिये राजदरबार।"

"अभी वह घर बहुत दूर है।"

"फिर क्या करना है?"

"अभी तो अङ्ग सुडौल बनाना है।"

"क्या फिर खरादपर चढ़ाओगे?"

"हाँ।"

"मैं हाथ जोड़ता हूँ....."

हीरा फिरसे खरादपर चढ़ा दिया जाता है और खराद तीव्र गतिसे चलने लगती है। इस बार खरादमें छाँटनेवाला यन्त्र लगा दिया जाता है—

हीरेके अङ्ग कट-कटकर गिरने लगते हैं। हीरा चीखता है, चिल्लाता है; परंतु खराद नहीं रुकती। प्रार्थना, चिरौरी, सब बेकाम होनेपर हीरा गालियाँ देता है—परंतु कोई असर नहीं होता, खराद तो समयपर हीरेन्द्रकी आज्ञासे ही रुकती है। फिरसे वही कोमल स्पर्शका अनुभव होता है और हीरा हीरेन्द्रकी हथेलीपर आ बैठता है।

"आह! अब तो मैं बड़ा सुन्दर हूँ।"

"हाँ!"

"फिर, चलो न राजदरबार?"

"अभी वह घर बहुत दूर है।"

"तो क्या करोगे?"

"उसी खरादपर चढ़ाऊँगा।"

"क्यों?"

"तुम्हें राजदरबारमें चलनेयोग्य बनानेके लिये।"

"यह कबतक होगा?"

"अभी सैकड़ों बार यों ही चढ़ो-उतरोगे।"

"हाय-हाय—"

"हीरा फिर खरादपर रख दिया जाता है। फिर वही सब क्रम चलता है। सैकड़ों बार चढ़ना और उतरना—अन्तमें सुडौल रूपमें हीरा हीरेन्द्रके हाथमें आता है।"

"अब तो मैं एकदम सुडौल हूँ।"

"हाँ, हो तो।"

"फिर अब देर काहेकी है?"

"अभी तो तुम एक द्वारसे ही प्रकाश उगलते हो।"

"सो कैसे?"

"जो तुम्हें हाथमें लेता है, वही तुम्हारी चमक देखता है।"

"फिर क्या चाहते हो?"

"हजार द्वारोंसे तुम्हें चमक दिखानी होगी।"

"कैसे?"

"मैं तुम्हारे हजार पहलू बनाऊँगा।"

"क्यों?"

"ऊपर, नीचे, अगल-बगल—सभी ओर तुम एक-से चमको।"

"कारण?"

"राजाके मुकुटके हीरे सभी एक-सा प्रकाश डालते हैं।"

"कैसे होगा?"

"उसी भाँति खरादपर चढ़नेसे।"

इस बार हीरा मौन रहा।

खरादपर हीरा फिर चढ़ाया गया—परंतु इस बार चीख-चिल्लाहट न थी। मौन वेदनाके साथ राजदरबारमें शीघ्र पहुँचनेका आनन्द सम्मिलित था। फिर भी अनेकों बार चढ़ना-उतरना हुआ। अन्तमें खरादका कार्य पूरा हुआ, हीरेन्द्रने घोषित किया—"अब खरादपर फिरसे चढ़नेकी आवश्यकता नहीं है।"

हीरा हीरेन्द्रकी हथेलीपर बैठा है। प्रकाशपुञ्ज चतुर्दिक् छिटक रहा है। हीरा मौन है।

"हीरे! अब नहीं पूछते कुछ?"

"क्या पूछूं, प्रभो? सभी तो प्रत्यक्ष है।"

"राजदरबारमें चलो न?"

"मुझे बड़ी लज्जा आती है।"

"काहेकी?"

"नाथ! तुम्हें मैंने कितनी गालियाँ दी हैं—"

"सो क्या हुआ?"

"और आप सदा प्रकाश ही देते रहे।"

"यही नियम है—अच्छा तो चलो न?"

"नाथ! क्यों लजाते हो—तुम्हीं तो राजा हो।"

"क्या पहचान गये?"

हीरा चरणपर खिसक पड़ता है—हीरेन्द्र उसे उठाकर अपने मुकुटपर चढ़ा लेते हैं।

---

(३)
सुगन्ध-विक्रयिणी

"कोई सुगन्ध ले लो! कोई सुगन्ध ले लो!! मेरे पास बड़ी अच्छी सुगन्ध है!!! अच्छा, न लेना चाहो, न लो; पर जरा इसे सूँघ तो लो, कैसी है? कितनी मीठी है?"—पुकारती हुई एक बाला हाटमें घूम रही थी। उसके हाथका झोला न खुलनेपर भी वातावरणकी दुर्गन्धको कुछ कम ही कर रहा था। एक अजब-सी महक चारों तरफ फैली हुई थी।

हाटमें अन्य भी सुन्दर-सुन्दर दुकानें थीं। सभी बड़ी तरतीबसे सजी हुई थीं—चारों तरफ बड़ी चहल-पहल थी और दुकानदारोंमें अपने-अपने मालके खरीदने-बेचनेका कोलाहल हो रहा था। सब अपनेमें मस्त थे, कुछ लोग खरीदकर अपनेको ऊँचा मान रहे थे। माल जब बिक जाता था तो 'चलो, कुछ तो कम हुआ' इस खुशीमें दुकानदारोंकी दृष्टिमें कुछ चमक आ जाती थी। कुछ लोग इन सबसे दूर मात्र तमाशा देख रहे थे, वे उसीमें आनन्द ले रहे थे। इस विपरीततासे प्राप्त सुख-दुःखमें ही सबेरेसे संध्या हो गयी—हाट उठनेका समय हो गया। सब अपनी-अपनी दुकान उठाकर चले गये। बालाने भी अपनी हाँक बंद कर दी।

रजनी बीती, फिर प्रातःकाल हुआ। हाटवाले फिर अपनी-अपनी दुकान सँभालने चले। बालाने भी अपना सुरभित झोला उठाया और चल दी हाटकी ओर .... उसे तो किसीसे कुछ लेना नहीं था। वह तो सारी हाटको सौरभका एक नमूना देना चाहती थी, परिचित कराना चाहती थी सबको कि दुनियामें ऐसी भी कोई सुगन्ध होती है, जो सब दुर्गन्ध नष्ट करके सौरभ-ही-सौरभ भर देती है।

हाटमें फिर वही सुमधुर स्वर सुनायी दिया—

"कोई सुगन्ध ले लो, सुगन्ध!"

कुछ मनचले, जिन्हें लेना बिल्कुल नहीं था, और जिनकी आदतमें प्याज आदि दुर्गन्धयुक्त पदार्थ ही भरे थे, मात्र कौतूहलसे ही पूछ बैठे—

"कैसी सुगन्ध है?"

"मेरी सुगन्ध ऐसी है, जो सारी दुर्गन्ध नष्ट करके चारों तरफ एक

अजब-सी महक, अनोखी खुशबू फैला देती है।''

''कैसे फैला देगी? हमारी दुकानमें तो बड़ी गंदगी है, चारों तरफ दुर्गन्धकी वस्तुएँ पड़ी हैं। क्या वहाँ भी सुगन्ध हो जायगी?''

''हाँ, अवश्य! मैं स्वयं ही आपकी सारी दुर्गन्धको धोकर साफ करके अपनी सुगन्ध वहाँ भर दूँगी, आपको कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। सिर्फ आप मुझे एक बार अंदर जानेकी अनुमति मात्र दे दें।''

''क्या मूल्य होगा तुम्हारी इस सुगन्धका?''

''अरे, मैं मुफ्तमें ही दूँगी, मुझे इसकी कीमत नहीं चाहिये; पर आप लेनेको तैयार तो हो जायँ।'' बालाने बड़े ही प्यारसे कहा और एक आशा-भरी नजरसे देखा। ....पर—''मूर्ख है! भला इसकी सुगन्धमें ऐसा क्या होगा, जो मेरी सारी दुर्गन्ध दूर कर दे।''—सोचते हुए लोग आगे निकल गये। बालाके नम्र निवेदन और इतने समझानेका कोई असर उनपर नहीं हुआ।

पर बाला भी बड़ी निर्लिप्त थी; उसे इस प्रकारके व्यवहारसे कोई कष्ट नहीं हुआ, उसके चेहरेपर कोई शिकन नहीं आया और उन व्यक्तियोंके प्रति कोई असद्भाव भी नहीं हुआ। वह तो फिर आगे चल निकली किसी दूसरे खरीददारकी खोजमें। फिर शाम हो गयी। पर कोई खरीददार नमूना देखनेको भी तैयार नहीं हुआ; सबने समझा शायद यह कोई मजाक है। पर बालाने हिम्मत न हारी।

प्रतिदिन ही हाटमें उसका मीठा स्वर सुनायी पड़ता था—

''कोई सुगन्ध ले लो—अरे, मैं मुफ्तमें ही दूँगी, इसके बदले मुझे कुछ नहीं चाहिये। पर नमूना तो लो—इसे सूँघो तो सही; फिर देखो कैसा मजा आता है।''

पर नहीं, कोई उसके पासतक नहीं आ पाता। दुनियाके अन्य कोलाहलोंमें उसकी यह मधुर वाणी किसीके पास पहुँच भी जाती तो भी कुछ प्रतिदान कोई नहीं कर पाता। पर बालाको भी न जाने कैसी सनक सवार थी। उसने अब हाट ही नहीं, अपितु हर द्वारपर जाकर हाँक लगानी आरम्भ कर दी—''अरे, कोई सुगन्ध ले लो। न सही, नमूना मात्र सूँघ तो लो।'' पर फाटक खुलते ही न थे।

फिर भी वह प्रतिदिन बिना किसी शिकन, चिन्ताके हाटमें आती, घूमती और संध्याको ग्राहक न मिलनेपर भी बिना किसी दुखके हँसती हुई वापस चली जाती।

एक दिन वह सोच रही थी कि दुनियामें सम्भवत: कोई भी इसका ग्राहक नहीं; तभी एक वणिक् महाराज पधारे—दोनोंमें कुछ बात होने लगी।

*   *   *   *

दूसरे दिन—हाटसे कुछ दूरपर एक पर्वतमालाको छूती हुई कल्लोलिनी लहरा रही थी। आज बाला उसके तीरपर बैठी थी। उसके दोनों पैर जलमें डूबे हुए थे और आँखें झर रही थीं। सहसा वह उठी। मानो स्थलपर चल रही हो—इस भाँति आगे बढ़ने लगी। कुछ ही क्षणोंमें लहरोंने उसे आत्मसात् कर लिया। सब ओर एक नीला प्रकाश फैल गया। दिनकरकी रश्मियाँ सचमुच नीली हो गयी थीं।

---

(४)
एक भिखारी

चिथड़े लपेटे एक भिखारी बैठा है सुदूर एकान्त वन-पथके किनारे। चारों तरफ मक्खियाँ भन-भन कर रही हैं—फूटे हुए मृत्तिका-पात्रोंके टुकड़े बिखरे पड़े हैं। स्वत: ही वृक्षोंपरसे झरे हुए सूखे पत्तों-टहनियों आदिका अम्बार-सा लगा हुआ है और कुछ ही दूरपर पयस्विनी लहरा रही है। भिक्षुक निर्लेप अपने चिन्तनमें तल्लीन है।

सहसा उसकी आँखें दक्षिणकी ओर उठीं—देखा......कुछ ही गजकी दूरीपर एक बड़ा खड्डा है और चार व्यक्ति उसके किनारे खड़े हैं। उनमें दो पुरुष हैं और दो स्त्रियाँ। चारों ही नेत्रहीन हैं—देख नहीं सकते। भिखारी शीघ्रतासे लपककर उनके पास पहुँचा और बड़ी ही मीठी भाषामें उसने पूछा—"तुमलोग कहाँसे आये? इधर इस स्थानपर कैसे आ पहुँचे? जहाँ तुम खड़े हो, उसके बायीं तरफ एक बड़ा खड्डा है; उस तरफ बिल्कुल मत खिसकना, अन्यथा गिर जाओगे। तुमलोग तो भाग्यसे बच गये।"—इतना

कहकर भिखारी उन चारोंको घेरकर इस रूपमें खड़ा हो गया, जिससे वह चारोंकी रक्षा कर सके, चारोंको ही खड्डेमें गिरनेसे बचा सके।

"बतलाओ तो सही, तुम इधर कैसे आये? इधर तो बहुत ही कम लोग आते हैं।"—भिखारीने फिर मधुर वाणीमें पूछा।

"गोपाल नामका भिखारी क्या इधर ही कहीं रहता है? हमलोग उसे ही ढूँढ़ते हुए आये हैं। क्या तुम बतला सकते हो वह कहाँ रहता है? हम बड़ी दूरसे आये हैं—रास्ता बड़ा ही बीहड़ था, नौ महीने चलनेके बाद आज यहाँ पहुँचे हैं। अन्तिम एक कोसकी यात्रामें ही सात दिन लग गये हैं।"—आगन्तुकोंने जवाब दिया।

भिक्षुकके नेत्रोंमें अश्रु छलछला उठे। बड़ी धीमी और मीठी आवाजमें उसने कहा—"गोपाल तो मेरा ही नाम है और भीख माँगकर खाता भी मैं ही हूँ। कहो—क्या चाहते हो?"

इतना सुनते ही चारों हर्षसे उन्मत्त हो उठे—सब एक साथ उससे लिपट जानेका प्रयास करने लगे; पर आँख न होनेके कारण वे भिखारीको देख न सके और स्वाभाविक ही उनका प्रयास विफल रहा। वे आकुल कण्ठसे बार-बार चिरौरी-मिन्नत कर रहे थे।

उनमें सबसे बड़े पुरुषकी आयु लगभग ६० वर्षकी थी। केश सफेद हो चले थे। बड़ी ही सादी वेष-भूषा थी, आडम्बर बिल्कुल नहीं था। दूसरा पुरुष ३५ वर्षके करीब अधेड़ उम्रका था। उम्रका तकाजा—उसमें अभी अल्हड़पन गया नहीं था।

बड़ी स्त्री ४० के आसपास थी। वह भी बड़ी शान्त और सादगीप्रिय थी। छोटी स्त्रीकी आयु थी ३५ के अंदाज, पर वह बड़ी ही शौकीन प्रवृत्तिकी थी। अंधी होनेपर भी उसने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गको सजानेका और शृंगारका बड़ा शौक था। उसके हाव-भाव उसकी इस प्रवृत्तिके द्योतक थे।

ये सभी अपने-अपने अवस्थानुसार सम्बन्ध बनाकर भिखारीको पुकारकर आतुरतासे कह उठे—

वृद्धने कहा—भैया गोपाल!

अधेड़ने कहा—दादा गोपाल!

बड़ी स्त्रीने आवाज दी—पिता गोपाल!

और छोटी बोली—"मेरे पिता गोपाल! हम सब बड़ी दूरसे आये हैं। तुम्हारे पास ही आये हैं।

भिखारीने सहानुभूतिके स्वरमें पूछा—"तुम बात तो बतलाओ—कैसे आये हो, किसलिये आये हो?"

"हम सभी एक ही गाँवके रहनेवाले हैं—जन्मसे ही हमारे आँख नहीं है। दस महीने पहले हम चारोंने ही एक सपना देखा। स्वप्न चारोंको ही एक-सा हुआ था और लगातार तीन दिन तक होता रहा था। स्वप्न इस प्रकार था—

'एक शुभ्र धवल दाढ़ीका व्यक्ति हमारे सामने खड़ा है। बड़ी ही आत्मीयता और स्नेहसे वह कह रहा था—तुम्हारी आँखें ठीक हो सकती हैं, यदि तुम मेरी एक बात मान लो तो। तुम भी प्रकाश नामकी वस्तु देख सकते हो, सम्पूर्ण दृश्य जगत् तुम्हारे नेत्रोंके सामने भी मूर्त्त हो सकता है, तुम भी दिवा-रात्रिमें भेद समझ सकते हो। पर तुम्हें इसके लिये प्रयास करना पड़ेगा। वहाँ जाना पड़ेगा, जहाँ इसकी चिकित्सा होती है—और वहाँ यह ठीक भी अवश्य हो जाता है। यह स्वप्न नहीं है, भला। तुम यदि वहाँ जाओगे तो तुम्हारी आँखोंमें अवश्य ही ज्योति आ जायेगी।'

"लगातार तीन दिनके स्वप्नके पश्चात् हमलोगोंने आपसमें परामर्श किया और चल पड़े। पथ बड़ा ही दुरूह था—भूखसे बेहाल रहे हैं, जल बिना कण्ठ सूखता रहा है; पर क्या करते? दया करके कभी किसीने खिला दिया तो खा लिया; नहीं तो बिना अन्न-जल ही यात्रा करते थे।"

"वन-पथकी यात्रा थी, दिशाका ज्ञान नहीं था। सैकड़ों बार रास्तेसे भटक जाते थे, आपसमें बिछुड़ जाते थे। इसी दुरावस्थामें कभी-कभी तो कई-कई दिन जल बिना भी रहना पड़ता था।"

यात्राकी दुरूहता और उनकी कष्ट-कथा सुनते समय भिखारी गोपालके नेत्रोंसे अनर्गल अश्रुप्रवाह बह रहा था ....बड़ा ही म्लानचित्त हो गया था वह उनके दुःखके कारण। पर उन चारोंमेंसे कोई भी इसे जान न सका नेत्र न होनेसे।

सान्त्वना और आश्वासन देते हुए भिखारी उन्हें उस पेड़के नीचे ले गया, जहाँ वह रहता था। मिट्टीके फूटे बर्तनोंमें उसने उन सबको शीतल जलपान कराया और चिथड़ेमें लिपटी हुई कुछ रोटियाँ भी थीं, वे उनको खानेको दीं।

आज बहुत दिन बाद इतना स्वच्छ, सुमिष्ट जल और बड़े प्यारसे दी हुई रोटियाँ खानेको मिलीं थीं। बड़ी ही विश्रान्तिका अनुभव किया चारोंने ही। इसके पश्चात् क्लान्त पथिकोंको कुछ देर विश्राम करनेका आदेश दिया भिक्षुकने। थके तो थे ही, लेटते ही चारों प्रगाढ़ निद्रामें सो गये। भिखारी फिर अपनी मस्तीमें मस्त हो गया।

संध्या होनेको आयी। दिनकर अस्ताचलकी ओर जा रहा था कि उनकी निद्रा भंग हुई। पर उनके लिये प्रातः, संध्या, सब समान ही थे—उनके दृष्टि-पथमें तो घोर अन्धकार मात्र था। सूर्यके प्रखर तेजका ज्ञान उन्हें था ही नहीं। जगते ही उन्होंने गोपालको आवाज दी—

बूढ़ा—भैया गोपाल!

अधेड़—दादा गोपाल!

और दोनों स्त्रियाँ—पिता गोपाल!

भिखारी पास ही बैठा था। उनकी आवाज उसके कानोंमें पड़ भी रही थी, पर उसे भी कुछ कौतुक करना था। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया—चारों चिन्तित हो उठे। कहीं भिखारी छोड़कर चला तो नहीं गया—इस आशङ्कासे भयभीत वे चारों आपसमें बात करने लगे। भिखारी चुपचाप बैठा हुआ उनकी बातें सुनता रहा।

एक घड़ी बाद मानों कहीं जाकर अभी लौटा हो, इस प्रकार भिखारी बोला—और उनको अपनी बात बतलानेको कहा।

बूढ़ेने फिर आरम्भ किया—''सपनेमें उस शुभ्र दाढ़ीवाले व्यक्तिने यही बताया कि सुदूर वन्यप्रान्तमें गोपाल नामका एक भिखारी रहता है—वह किसीकी भी आँख, चाहे कितनी ही बिगड़ी क्यों न हो, ठीक कर देता है। तुमलोग वहाँ चले जाओ, तुम्हारी आँखें भी अवश्य-अवश्य ठीक हो जायँगी।''

ठीक ही स्वप्न दिया था उस दाढ़ीवालेने—आँख तो ठीक "गोपाल" ही कर सकता है, चाहे कितनी ही बिगड़ी क्यों न हो। दूसरेकी क्या सामर्थ्य, जो किसीकी आँख ठीक कर सके—वहाँ तो अपनी ही ठीक होनी कठिन है।

भिखारी अब मुस्कुरा रहा था। "अच्छा, तो तुम नेत्रोंकी चिकित्सा करवाने आये हो। पर मैं स्वयं तो चिकित्सा करता नहीं—हाँ, करवा दूँगा। पर इसके लिये तुम्हें जितना चलकर तुम आये हो उतना ही और चलना पड़ेगा। उतनी दूर जानेके बाद तुम मेरे चिकित्सक मित्रके निवास-स्थलपर पहुँच जाओगे और वहाँ तुम्हारे रोगका निदान हो जायगा; तुम ठीक भी अवश्य हो जाओगे और जानेमें कोई कष्ट भी नहीं होगा। मैं सब व्यवस्था कर दूँगा। पर फिर भी तुम वहाँ जाओगे या नहीं—कह नहीं सकता? क्योंकि तुमसे पहले अन्य भी कुछ अंधे यात्री मेरे पास आये थे और उन्हें भी मैंने इसी प्रकार आश्वासन दिया था; पर वे जा न सके।"

"मैंने उन्हें भी बताया था कि जहाँ कहीं रात होगी, मैं आवासकी व्यवस्था कर दूँगा, खाने-पीनेका प्रबन्ध कर दूँगा। जितनी सुविधा आवश्यक होगी, सब यथासमय यथास्थान प्राप्त हो जायगी।"

"पर इसके उपरान्त भी लोग साहस न कर सके उस पथके पथिक बननेका, इतना रास्ता तय करके गन्तव्यतक पहुँचनेका।"

"अतः खूब सोच लो, टटोल लो अपने मनको; तुमलोग भी इतनी दूर और चल सकोगे? है हिम्मत फिर चलकर चिकित्सा करवाने जानेकी? यदि हाँ तो चलो—मैं सब इंतजाम कर देता हूँ, तुम्हें पूरे रास्ते पैदल भी नहीं चलना पड़ेगा। कुछ ही दूर यह वनस्थल पार करनेके बाद एक बैलगाड़ी मिल जायगी, उसके बाद घोड़ागाड़ी, तदनन्तर यन्त्र-चालित गाड़ी और अन्तमें एक ऐसी गाड़ीका प्रबन्ध कर दूँगा, जो आकाश-मार्गद्वारा बहुत ही तेजीसे जाती है और वही गाड़ी तुम्हें उस स्थानपर पहुँचा देगी, जहाँ मेरा मित्र रहता है—जो नेत्र-चिकित्साका सर्वोत्तम विशेषज्ञ है और जिसके पास पहुँचकर कोई भी रोगी कभी हताश नहीं लौटा है। सभी, जो भी अन्धकार लेकर गये हैं, ज्योति लेकर ही वापस आये हैं।"

"अब कहो—जाओगे? खूब विचारकर निश्चय कर लो।"

इस प्रकारकी मीठी-मीठी चर्चामें ही सारी रात्रि बीत गयी। चारोंने निश्चय कर लिया, वहाँ जाकर अपनी चिकित्सा करवाकर नेत्र-ज्योति प्राप्त कर लेनेका।

प्रातःकाल हुआ, भगवान् अंशुमालीकी प्रथम रश्मिके साथ ही चारों चल पड़े। भिखारी भी साथ चल रहा था, पर वे देख नहीं पा रहे थे। चारोंने चार पगडंडियाँ पकड़ लीं; पर चारोंकी दिशा एक ही थी, लक्ष्य एक ही था।

वृद्ध बिल्कुल सीधा जा रहा था। उसे इधर-उधरकी कुछ खबर नहीं थी। उसकी वृत्तियाँ एकाग्र-सी होकर यथाशीघ्र चिकित्सकके पास पहुँचना चाह रही थीं। वह शान्त चला जा रहा था।

अधेड़ भी चल तो रहा था, पर उसके पैर बार-बार लड़खड़ा रहे थे। वह इस दृश्य प्रपञ्चको न देख सकनेपर भी इसके चिन्तनमें फँस जाता था और बार-बार पैर इधर-उधर पड़ने लगते थे।

जो सबसे छोटी थी, वह तो बार-बार गिर पड़ती थी। हर ध्वनि, हर स्वर उसका ध्यान आकर्षित कर लेता था और वह अपना ध्यान अपने लक्ष्यसे हटाकर अन्य जगह केन्द्रित कर देती—नेत्र तो थे ही नहीं, मनकी एकाग्रता भी न रहनेसे वह बार-बार अपनेको सँभाल न पाती थी, गिर जाती थी।

एक जो बची थी, वह बिल्कुल ठीक जा रही थी। अन्य सब तरफसे मनको हटाकर वह मात्र चिकित्सकके पास पहुँचना चाहती थी और अपनी तरफसे उचित प्रयास कर रही थी।

इस प्रकार चारों किसी तरह चल रहे थे। कुछ-कुछ दूरपर पहुँचकर ही वे पूछते—"अब बैलगाड़ी कहाँ मिलेगी? क्या हमलोग ठीक जा रहे हैं? भिखारी प्रत्येक बार आवाज बदलकर उत्तर देता—"हाँ, तुम ठीक जा रहे हो। बैलगाड़ी कुछ दूर और चलनेपर मिलेगी। अभी थोड़ा और पैदल चलना पड़ेगा।" आवाज न पहचाननेके कारण वे सर्वथा नहीं समझ पाते कि भिखारी ही उनके साथ चल रहा है और वही हर बार आवाज बदल-बदलकर उत्तर-प्रत्युत्तर दे रहा है। वे समझते—सहयात्री कितने अच्छे हैं, कितनी आत्मीयतासे हर बातका उत्तर देते हैं।

चलते-चलते कितने ही दिन और रातें बीत गयीं। पर वे चलते चले जा रहे थे। उनकी यात्राका विराम तो अब गन्तव्यपर पहुँचकर ही होगा, चाहे कितनी ही दिवा-रात्रियाँ क्यों न बीत जायँ।

प्रतिदिन सूर्यके अस्ताचलकी ओर जाते ही गोपाल एक सरायकी ओर इङ्गितकर सराय-मालिककी आवाजमें कहता—"सराय आ गयी है; ठहरना चाहो ठहर जाओ। अंधे हो, गिर पड़ोगे भला—आगे न जाना।" ठहरनेपर फिर उनसे बातें करता—"भैया, तुम कहाँसे आये हो? कहाँ जा रहे हो?" आदि....... फिर आवाज बदलकर उनके हाथपर खाद्य-सामग्री रखकर कहता—"खा लो। आज हमारे यहाँ उत्सव था। हमने चार भिखारियोंको भोजन करानेका व्रत लिया था; भाग्यसे तुम मिल गये; यदि खाना चाहो तो खा लो, अन्यथा किसी दूसरेको दे दें।" इस प्रकार भिखारी गोपाल उनके भोजन-निवास आदिकी व्यवस्था कर देता था।

कभी जलकी आवश्यकता होनेपर आवाज लगाता—"जिसको ठंडा पानी पीना हो, पी लो! जिसको ठंडा पानी पीना हो, पी लो!! मैं पानीका सदाव्रत बाँटता हूँ।" फिर स्वयं ही पास आकर कहता—"तुम पानी पीना चाहो तो पिला दूँ।"

इस रूपमें प्रातःसे सायंतक गोपाल उनकी सारी सार-सँभाल करता, प्रत्येक सुविधाका ध्यान रखता; पर वे बिचारे समझते प्रभुकी महती कृपासे सैकड़ों विभिन्न व्यक्ति पथमें मिलते हैं और सभीके सुन्दर सहयोगसे हमारी अत्यधिक सुविधापूर्ण व्यवस्था होती चली जा रही है।

कभी-कभी मध्यनिशामें किसीकी निद्रा भंग हो जाती तो 'चौकीदार गोपाल' तुरंत पास आकर बैठ जाता और बड़ी ही सहृदयतासे पूछता—"भैया! कहाँसे आये हो, किधर जा रहे हो? और उनके भिखारी गोपालका नाम लेते ही दो-चार दिनोंके अन्तरसे कह बैठता—"अच्छा! उसके भेजे हुए जा रहे हो। उससे तो मेरी बड़ी पक्की दोस्ती है। बहुत ही सुन्दर बात है, वहाँ पहुँचकर तुम अवश्य ठीक हो जाओगे। तुम्हारे नेत्रोंमें ज्योति जरूर आ जायगी।

यदा-कदा आवाज बदलकर पूछता—गाँजा पीओगे, सुरती खाओगे? कभी शराबकी बोतल कहींसे उठा लाता और एक शराबीकी भाँति पूछता—

क्या तुम भी पीओगे? इस रूपमें शराब पीनेकी प्रेरणा भी देता। किसी दिन सफल जुआरीकी भाँति जूआ खेलनेका आग्रह करता। कुछ दिनोंके अन्तरसे पूछता चौपड़-शतरंज, कौड़ी आदि खेलनेको।

किसी दिन कह बैठता—चलो आज तुम्हें मधुर संगीत सुनवा लाऊँ; तुम नेत्रोंसे तो देख नहीं सकते, कर्ण-कुहरोंके द्वारा ही आनन्द ले लो।

उसके इस भुलावेमें जो सबसे छोटी थी, वह तो कभी-कभी बहक जाती थी और कुछ हदतक वह अधेड़ भी चक्करमें आ जाता था—और तब वह किसी न किसी बहानेसे, कभी किसी आगन्तुकका नाम लेकर अथवा कभी किसी अन्य आवश्यक कामके नामसे प्रसङ्ग बदल देता। इस तरह भुलावेमें डालता हुआ वह उन्हें आगे ले जा रहा था।

चलते-चलते नियत दिन एक स्थल आया—वहाँ बैलगाड़ी पहलेसे तैयार खड़ी थी, पर कोई उसे हाँकनेवाला नहीं था। गोपाल स्वयं आकर गाड़ीवालेके स्थानपर बैठ गया और उसकी ही आवाजमें बोला—"तुमलोग कहाँसे आये हो? गोपाल भिखारीका पत्र मेरे पास आया है कि चार अंधे आनेवाले हैं। क्या तुमलोग वे ही हो? मैं तुम्हारे ही लिये गाड़ी लिये खड़ा हूँ। चलते-चलते चारोंके पैरोंमें फफोले पड़ गये थे। वे सभी बहुत थक गये थे। गाड़ीमें बैठनेपर उन्हें क्या सुख हुआ, इसे तो वे ही जान सकते थे। इतने दिनकी यात्रा, पाँवमें फफोले और उस समय जब गाड़ी मिल गयी—वे पुलकित हो उठे, बड़ा सुखका अनुभव किया उनलोगोंने।

गाड़ीमें बैठे, गाड़ी चल पड़ी। पर वे सब गाड़ीमें बैठनेके बाद कुछ चञ्चलता अनुभव करने लगे। सबने कुछ छेड़छाड़ आरम्भ कर दी। इससे वृद्धकी अँगुलीमें चोट लग गयी। छोटी स्त्रीके केश नुच गये और अधेड़के भी कई जगह खरोंच आ गयी। बड़ी स्त्रीकी शान्तिमें कुछ व्यवधान नहीं था। वह तो पूर्ववत् ही निश्चल थी। चोट लगनेपर भिखारी प्रत्येक बार उतरकर मरहम पट्टी करता, फिर इस प्रकारकी छेड़छाड़ न करनेकी हिदायत देता।

निश्चित स्थानपर जाकर देखा घोड़ागाड़ी खड़ी है—पर उसपर भी चालक नहीं था। गोपाल चट उसपर जा बैठा और पुकारा—"क्या तुमलोग गोपालके भेजे हुए आये हो? आओ! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षामें बैठा हूँ।"

सब उसमें जा बैठे। एक सुरम्य स्थलको पार करते-करते संध्या हो चुकी थी। सब वहाँ ठहर गये। वहाँकी धर्मशाला अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ थी तथा जल आदिकी सुन्दर व्यवस्था थी। भोजन भी अधिक सुरुचिपूर्ण था। प्रातःकाल होते ही यात्रा फिर प्रारम्भ हुई। इस बार यन्त्र-चालित गाड़ीपर चलना था। चालक तो गोपाल था ही—उसपर सवार हो गया। यह गाड़ी बड़ी तेजीसे गन्तव्यकी ओर चली।

निश्चित स्थानपर पहुँचनेपर देखा दूसरी अधिक तीव्रगामिनी गाड़ी तैयार है। इसने तो कुछ ही देरमें अपने पड़ावपर पहुँचा दिया। जैसे-जैसे गन्तव्य निकट आता था, वैसे-वैसे ही सुविधाएँ भी स्वतः ही उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थीं। इस पड़ावकी सुविधा और आरामकी तो बात ही कुछ और थी। सबने बड़े आनन्दसे रात्रि बिताकर फिर प्रस्थान किया। आजकी यात्रा तो गन्तव्यतक पहुँचा ही देगी—ऐसा सबका विश्वास था। फिर आज चलना भी था आकाशमार्गसे। यथास्थान आकाशमार्गकी गाड़ी मिल गयी। और चारों उड़ चले ………।

गन्तव्य-स्थान आ गया—सब लक्ष्यपर आ पहुँचे। नेत्र न होनेके कारण वे तो कुछ समझ न सके, पर उनकी सुख-सुविधाका सारा प्रबन्ध कर दिया गया। वे एक आलीशान मकानमें ठहरा दिये गये और 'चिकित्सक गोपाल' रोगके बारेमें पूछताछ करने आया। उसने बड़ी ही मधुर वाणीमें कहा—"कलसे आपकी चिकित्सा प्रारम्भ होगी, भिखारी गोपाल मेरा परम मित्र है—उसने आपलोगोंको यहाँ भेजकर बड़ा अच्छा किया। आपकी आँखोंमें क्या-क्या कष्ट है, बताइये।"

"महाराज! हमलोग जन्मसे ही अन्धे हैं। हमें कुछ नहीं सूझता। हमारे लिये तो काला और सफेद—सब बराबर है; आप कृपया अपनी चिकित्सासे हमें ज्योति प्रदान करें।" चारोंने उत्तर दिया।

सब प्रकारसे पूछताछ हो जानेके बाद चिकित्सकने एक तरल पदार्थ देकर आदेश दिया—'इसका एक छींटा रोज आँखपर लगाते रहो—इससे तुम्हारे नेत्रोंमें प्रकाशके लिये आवश्यक सब वस्तुओं—पुतली, नेत्रों-गोलक, पलक आदि—का निर्माण हो जायगा। इसके पश्चात् एक-एक करके शल्य-

चिकित्साद्वारा मैं चारोंकी आँखें खोल दूँगा—और आप लोग भी सब कुछ देखनेमें समर्थ हो जायेंगे।"

चारोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे ले लिया और बड़ी ही आशाके साथ उसका एक छींटा रोज नेत्रोंपर लगाने लगे। इससे उनके नेत्रोंको कुछ शीतलताका अनुभव होता। पर वे चिकित्सकके बताये पथ्यका पालन न करते थे, वृद्ध तो प्राय: खान-पानमें कुपथ्य कर लिया करता था। इससे उसके नेत्रोंमें कुछ जलन होने लगती। तब घबराकर वे चिकित्सकसे शिकायत करते। चिकित्सक फिर उनको कुपथ्यसे बचनेको कहता।

इस प्रकार लगानेके कुछ दिन बाद एक दिन कुछ ही क्षणोंके व्यवधानसे चतुर शल्य-चिकित्सकने चारोंके नेत्रोंकी ज्योति खोल दी। सबके नेत्रोंमें देखनेकी पूरी शक्ति आ गयी।

आँखें खुलते ही चारोंने देखा—नवनीरदवर्ण द्विभुज बालक सामने खड़ा है। उसके मन्दस्मितमें चारों एकबार तो खो-से गये—नेत्रोंके खुलते ही सर्वप्रथम प्रभु-दर्शन करके वे कृतार्थ हो गये।

कुछ क्षणोंके बाद जैसे ही ध्यान जरा-सा हटा, चारोंके मनमें एक साथ ही वृत्ति जगी—'अरे वह भिखारी कहाँ है, जिसकी कृपासे हम यहाँतक पहुँचकर अंधेसे आँखवाले बन सके, और जिसके स्नेह, अपनत्व और सहयोगसे ही हम आज यहाँ इस स्थितितक भी पहुँच गये!'

चारोंके मुखसे एक साथ निकला—"प्रभो! वह भिखारी कहाँ है?" उसका नाम सुनते ही प्रभुके कमलदल नेत्र अरुण हो उठे, मानों उनमें रोष भर गया हो। मेघ-गम्भीर वाणीमें बोले—"अरे, तुम किस बदमाशके बारेमें पूछ रहे हो? वह तो बड़ा ही पाखण्डी था और अब तो वह मरकर नरकमें पड़ा है। भीषण नारकीय यन्त्रणा भोग रहा है।"

प्रभुकी यह वाणी सुनते ही चारोंके प्राण हाहाकार कर उठे, हृदय रो उठे। वे कहने लगे—"नाथ! करुणासिन्धो! कृपया एकबार हमें हमारे उस परम सुहृद्—भैया गोपाल, दादा गोपाल और पिता गोपालके दर्शन करा दीजिये। हमें चाहे इसके लिये कितनी ही भीषणतम यन्त्रणा भोगनी पड़े, पर आप उसे एकबार हमसे मिला अवश्य दीजिये।"

तुरंत दीखा—भीषण नरक-कुण्ड है। चारों ओर अग्नि धधक रही है और भिखारी गोपाल उसमें जल रहा है। देखते ही चारों दुःखसे उन्मत्त-से हो उठे—और

'भैया गोपाल!

दादा गोपाल!

पिता गोपाल!'

—पुकारते हुए उसमें कूदनेको उद्यत हो गये।

* * * *

नवनीरदवर्ण द्विभुज बालक हँसता हुआ कह रहा है—''अरे, वह भिखारी तो मैं ही हूँ। मैं ही वह शुभ्र दाढ़ीवाला व्यक्ति हूँ, जिसने तुम्हें स्वप्न दिया था। मैं ही पूरी यात्रामें तुम्हारे साथ गाड़ीवाला, सरायवाला, पानीवाला, पथ-प्रदर्शन करनेवाला बनकर चलता रहा...... पर तुम नेत्र न होनेके कारण समझ नहीं पाये। यहाँ चिकित्सक भी मैं ही था—मैंने ही तुम्हारे नेत्रोंकी ज्योति खोली है।''—ठीक ही है, बिना सर्वसमर्थ प्रभुके किसीके नेत्रोंको ज्योति कौन प्रदान कर सकता है—''और अब मैं इस रूपमें तुम्हारे सामने खड़ा हूँ—चारों भाव-विभोर हो उठे।''

* * * *

देखा—एक गौर ज्योति बायीं ओरसे आयी—सर्वत्र प्रकाश हो उठा। उस ज्योतिके साथ ही—

''बसौ इन नयननि में दोउ चंद''

कहते हुए चारों उसमें विलीन हो गये।

----

(५)

जगन्नाथ-यात्रा

निर्जन वनप्रदेश स्रोतस्विनीके कर्णप्रिय कल-कलरवसे गुंजायमान हो रहा है। सर्वत्र अखण्ड शान्ति विराजित है। तीरपर महात्मा अपने चिन्तनमें लीन हैं—नेत्र बंद हैं, मुख-मण्डल तेजसे देदीप्यमान हो रहा है—निश्चल, शान्त बैठे हैं।

घटना उस समयकी है, जब भारतवर्षमें वनस्थलका साम्राज्य था और दस्यु ही इस वनस्थलीके सम्राट थे। यातायातकी बिल्कुल सुविधा नहीं थी, रेल आदिका आविष्कार नहीं हुआ था—पथ भी इतने सुव्यवस्थित नहीं थे। पदयात्रा ही मात्र साधन थी एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाने की।

पर पगडंडी क्या, सड़कसे भी दस्यु-भयके कारण यात्रा असम्भव-सी थी। वे जब, जहाँ, जैसे भी होता अप्रत्याशित विपत्तिकी भाँति आकर टूट पड़ते और फिर सब कुछ छीने जानेपर भी यदि जीवनदान मिल जाता तो पथिक अपना अहोभाग्य समझते, अपने किसी विशेष सुकृतका फल मानते। सुदूर यात्रा करके तो बहुत कम ही लोग सकुशल अपने निवास-स्थलपर लौट पाते थे। प्रत्यावर्तनकी आशाका सर्वथा परित्याग करके ही वह यात्रा प्रारम्भ होती थी। अस्तु,

कन्नौज शहर भी उस समय इतना सुन्दर बसा हुआ नहीं था। आजकी सुख-सुविधाका चित्र तो लोगोंके सामने आया ही नहीं था। शहरके समीप ही एक छोटा-सा ग्राम था।

सभी ग्रामवासियोंकी अत्यधिक श्रद्धा थी तीरवर्ती महात्मापर। ध्यानस्थ महात्माके नेत्र खुले। 'कल दिनकरकी प्रथम किरणके साथ ही मैं भगवान् जगन्नाथके दर्शनको जा रहा हूँ'—महात्माने कहा। 'जो मेरे साथ चलना चाहे, चले।' ....श्रद्धा तो थी ही, फिर भगवद्दर्शनके इस सुदुर्लभ अवसरको कौन छोड़ता। अधिकांश धर्मप्राण ग्रामवासी अपने सम्पूर्ण परिवारको लिये महात्माके साथ चल पड़े। पूरी टोलीने भगवान् जगन्नाथके जय-घोषके साथ प्रस्थान किया। बीहड़ वनपथसे यात्रा प्रारम्भ हुई।

कुछ ही दूर चले होंगे कि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एक दस्युओंके

दलने उनपर आक्रमण कर दिया। चारों तरफ भयंकर आतङ्क फैल गया—सभी अपनी-अपनी प्राणरक्षाको व्यग्र हो उठे। दस्युओंको इससे क्या—वे तो सम्पत्ति लूटने आये थे और उसके लिये प्रयास करने लगे। पर धन मानवकी सबसे बड़ी दुर्बलता है, दस्यु और पथिक दोनों ही इस रोगसे पीड़ित थे। दोनों ही स्वयं इसके अधिकारी बने रहना चाहते थे, अतः उत्पीड़न आरम्भ हो गया। कुछ क्षण महात्मा चुपचाप तमाशा देखते रहे—पर जब टोलीके लोग बहुत अधिक त्रस्त हो गये, तब महात्माने सम्पूर्ण सम्पत्ति दस्युओंको दिलवाकर धन और दुःख दोनोंसे पिण्ड छुड़वा दिया। अब तो जीवन-निर्वाहका साधन भिक्षा ही रह गया। आगे चले—समुदायमें विभिन्न प्रकारके लोग थे, अतः मतभेद होने लगा। छोटी-छोटी बातोंमें विचार-विमर्श चलने लगा, पर निर्लिप्त संत किसी प्रकार सबके मनकी करनेका प्रयास करते हुए चले जा रहे थे।

दूसरी विपत्ति आयी—महामारी फैल गयी। टोलीके बहुतसे लोग रोगाक्रान्त हो गये। जो बचे, वे इस डरसे कि कहीं वे भी इसके शिकार न हो जायँ रोगियोंके पास जानेमें भी हिचकिचाहटका अनुभव करने लगे। निर्जन वन, पथकी भयंकरता और असमयमें रोगका प्रकोप—पर महात्माके चित्तमें कोई व्यवधान नहीं था। वे तो उसी प्रकार मुस्कराते रहे, वन-पथके जलसे ही सबकी चिकित्सा उन्होंने स्वयं की। धीरे-धीरे सब स्वस्थ हो चले। यात्रा फिर प्रारम्भ हुई—कुछ दूर चले कि संध्या हो गयी। यामिनी अपना कृष्ण वितान ताननेका उपक्रम करने लगी। सब वहीं रुक गये। संध्या-वन्दन आदिसे निवृत्त होकर जो कुछ मिला खा लिया, फिर वनस्थलीमें चारों तरफ विश्राम करने लगे। किसीने ठीक ही कहा है—निद्राको शय्याकी आवश्यकता नहीं है। दिनभरकी पैदल यात्रा, थका हुआ शरीर—जो जहाँ लेटा प्रगाढ़ निद्रामें मग्न हो गया।

मध्य निशा, अचानक चीत्कार सुनायी पड़ा। सब चौंककर उठ बैठे। अमावस्याकी काली रात्रि, हाथसे हाथ नहीं सूझता था। किसी प्रकार अग्नि आदि जलाकर प्रकाश किया गया—देखा एक वृद्धको साँपने काट खाया है। उसके उपचारके बारेमें सोच ही रहे थे कि एक स्त्री-कण्ठकी आवाज

आयी—उसे भी सर्प-दंश हो चुका था। कुछ लोग उसे सँभालनेमें लगे। पर सर्पदेवताका रोष शान्त नहीं हुआ था। जाते-जाते भी उन्होंने सुखकी नींद सोये एक बालकको अपने क्रोधका शिकार बना लिया। बालकके करुण क्रन्दनसे सारा वन्यदेश मुखरित हो उठा। सब बड़े चिन्तित हो रहे थे। अचानक एक सपेरा उस क्रन्दनको सुनकर उधर आ पहुँचा। सारी वस्तुस्थितिका ज्ञान होनेपर उसने अपनी विचित्र विद्यासे सबका उपचार कर दिया। खैर, जैसे-तैसे कारवाँ फिर चली—पर अभी विपत्ति शेष नहीं हुई थी।

घोर जंगलसे टोली चली जा रही थी। चारों तरफसे हिंसक वनपशुओंके आक्रमणकी आशङ्का थी। जरा-सी भी आहट सबको चौकन्ना कर देती थी। कुछ क्षणोंके बाद ही आशङ्का सत्यमें परिणत हो गयी। एक बाघ सामनेसे चला आ रहा था। कालको इस प्रकार सामने देखकर सबके प्राण सूख गये। सब निस्तब्ध हो गये। पर सबमें समान रूपसे विराजित प्रभुका दर्शन करनेवाले महात्माने देखा—अहो! प्रभु आज इस रूपमें चले आ रहे हैं। करुणा-वरुणालय नाथ आज इस रूपमें दर्शन देकर सबको कृतकृत्य करेंगे। श्रद्धा और भावावेशमें मस्तक टेक दिया महात्माने व्याघ्रके चरणोंमें। सब हाहाकार कर उठे। पर—*'जिन्ह कै रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी।'*

महात्मा दर्शन कर रहे थे—भक्त-भयहारी भगवान्‌का और दूसरोंके लिये था वह हिंसक प्राणघाती पशु। बाघ चुपचाप चला गया नतमस्तक संतके बगलसे।

एक-एक करके सबको उस जंगलको पार करवाकर महात्मा सबके पीछे सबकी सुरक्षाका ध्यान रखते हुए फिर चले।

संयोगकी बात। कुछ देर ही शान्तिपूर्वक चले होंगे कि लीलामय कौतुकी प्रभुने एक नया कौतुक उपस्थित कर दिया। आगे-आगे बच्चे और स्त्रियाँ जा रही थीं। अचानक पासकी एक झाड़ीसे निकलकर एक भयानक भालूने एक युवतीको पकड़ लिया। देखते ही भगदड़ मच गयी। सब चारों तरफ दौड़-भागकर येन-केन-प्रकारेण अपनी प्राणरक्षाका प्रयास करने लगे। युवतीकी चीख-चिल्लाहटका किसीपर कोई असर नहीं हुआ। कोई भी अपने प्राणोंको संकटमें डालकर उसकी रक्षा करनेका साहस न कर सका।

महात्मा आगे बढ़े—ऋक्षरूपमें पधारे श्रीहरिको प्रणाम किया, चरणोंमें मस्तक रखा, चमत्कारकी बात, भालूने तुरंत ही स्त्रीको छोड़ दिया और आगे चल पड़ा।

कुछ लोगोंको बड़ी श्रद्धा हुई, महात्माके प्रति। पर कुछ छिद्रान्वेषी सज्जन भी साथ ही थे एकने तीरपर तुक्का लगाया—'अरे भालू तो स्त्रियोंको खाता ही नहीं, वह तो नारी-जातिको कभी हानि नहीं पहुँचाता—इसमें महात्माजीकी क्या विशेषता है, वह तो स्वयं ही उसे छोड़ देता।'

दूसरेने कहा—'भई, महात्माजी हैं तो महात्मा ही; पर उनमें एक चीज अशोभन-सी है। वे स्त्रियोंकी अधिक सँभाल करते हैं, उनपर अधिक ध्यान देते हैं। साधुवेषधारीके लिये यह उचित नहीं प्रतीत होता।'

अश्रद्धाकी लहर चल पड़नेके बाद तो, बस, कहना ही क्या, परनिन्दामें जो रस मिलता है, उसमें जिस सुखका अनुभव होता है, सम्भवतः अन्य किसी चीजमें नहीं। सभी महात्माजीकी निन्दा करनेमें जुट गये।

किसीने क्षोभ प्रकट किया—'सुना है महात्मालोग समता रखते हैं, उनके लिये गरीब-अमीरका कोई भेद नहीं होता; पर ये महात्माजी तो बिल्कुल उल्टा चलते हैं। ये तो उसको ही महत्त्व देते हैं, जो कभी वैभवशाली रहा हो,—लक्ष्मी कभी जिसके चरणोंमें लोटती रही हो। निर्धन व्यक्ति तो इनके दृष्टि-पथमें बहुत देर बाद आ पाते हैं।' इस प्रकार लोग बड़ी-बड़ी आलोचना करते थे, पर वे सच्चे अंशमें समदर्शी संत थे। उनपर कोई असर नहीं होता था।

चर्चा चल ही रही थी कि एक प्रगल्भने व्यंग किया—भैया! इतना ही नहीं, साधुजी खुशामदप्रिय भी बहुत हैं—जबतक इनकी प्रशंसा करो, इनके हर उचित-अनुचित कार्यका समर्थन करो, तबतक तो रहते हैं परम प्रसन्न; अन्यथा इनका रोष-भाजन होनेमें भी समय नहीं लगता।

बहती गङ्गामें हाथ कौन नहीं धोना चाहेगा। कुछ एकने चुटकी ली—'अजी महात्माजी कहते हैं, मैं तो कभी झूठ नहीं बोलता, सर्वथा सर्वांशमें सत्य ही मेरी वाणीमें आता है। सम्भव है, यह सत्य हो; पर लगता तो ऐसा है कि जीवनमें आजतक इनकी कोई भी बात सत्य नहीं हुई है। अब सर्वज्ञ

सर्वविद् प्रभु ही जानें वास्तविकता क्या है।

इसी प्रकार क्षोभ-स्नेह, सद्भाव-अश्रद्धा लिये सभी चले जा रहे थे। गन्तव्य निकट ही आ गया था। महात्मा किसी भाँति सबको यहाँतक ले आये थे। अब जगन्नाथ धाम मात्र डेढ़ कोस रह गया था। लक्ष्यको इतना संनिकट जानकर सब उल्लासमें भर रहे थे।

संध्या होनेको आयी। भगवान् भुवनभास्कर अपनी किरणोंको समेट अस्ताचलको जा रहे थे। वहीं पड़ाव डाल दिया गया।

महात्माजीकी मौज—आसन बिछाया और बिना खाये ही सो गये। महात्माजी ही सबके लिये भिक्षा माँग लाया करते थे—अतः अन्य सबको भी भूखा ही रहना पड़ा। विवश बेचारे सब उस रात क्षुधित ही सो गये।

प्रातःकाल हुआ। रजनी बीती और उषा सुन्दरी अपनी सिंदूरी चुनरी ओढ़कर प्राचीमें प्रकट हुई। महात्मा उठे और रोषभरी वाणीमें बोले—'देखो, कितना कष्ट सहकर हम इतनी दूर पैदल चल कर यहाँ आये हैं। रातभर भूखे रहे हैं, और भगवान् जगन्नाथको इतनी भी परवा नहीं कि वे यहाँ आकर हमारा स्वागत भी करते। क्या उन्हें इतना भी नहीं करना चाहिये था? जो हो। मैं तो अब तभी जाऊँगा, जब वे स्वयं मुझे यहाँ लिवाने आयेंगे।'

सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। महात्माजी यह क्या कह रहे हैं? क्या कभी भगवान्‌का श्रीविग्रह भी चलकर आता है? दर्शनार्थी भक्त ही वहाँ जाते हैं। तरह-तरहकी कानाफूसी होने लगी। कुछने समझा—साधुजीका मस्तिष्क विकृत हो गया है, तभी ऐसी बहकी-बहकी बातें कह रहे हैं। कुछ सोच रहे थे कि महात्मा झूठा प्रदर्शन कर रहे हैं—भला, यह कभी सम्भव हो सकता है? अस्तु, टिप्पणी तो सब कर रहे थे, पर थे बेचारे सब असहाय। किसीको भिक्षा माँगनेकी आदत नहीं थी, और भूखा कोई रह नहीं सकता था। अतः छोड़कर जा भी कोई नहीं पाता था।

महात्माजीको समझानेका प्रयास करते-करते एक मास व्यतीत हो गया। पर वे टस-से-मस होनेको तैयार नहीं हुए।

लोग तंग आ गये। सब ऊब-से गये महात्माजीकी इस जिदसे। अन्तमें बहाना बना-बनाकर सबने साथ छोड़ना चाहा।

एक दिन एक व्यक्तिने आकर कहा—'महाराज! मुझे बड़े जोरका अतिसार हो गया है। आप आज्ञा दें तो मैं यहाँसे कुछ दूर गाँवमें जाकर अपना उपचार करवा लूँ।' महात्मा तो जानते ही थे। मुस्कराकर उन्होंने सम्मति दे दी।

दो-चार दिन और निकल गये—'यहाँसे कुछ ही दूरपर एक बड़ा ही रम्य वनखण्ड है, ध्यानके लिये वह बड़ा ही सुन्दर एकान्त स्थल है। आप अनुमति दें तो हम वहाँ ध्यान करने चले जायँ।' दूसरी माँग आयी और महात्माजीके समर्थन करनेपर कुछ लोग ध्यान करने चल दिये। महात्माजीपर इसका कोई असर नहीं—वे तो अपने निश्चयपर अटल थे। समय बीतता जा रहा था ....'हम स्वयं तो आपको छोड़कर कदापि नहीं जाना चाहते थे,' कुछ सज्जनोंने सफाई दी, 'पर हमारी पत्नियाँ जिद कर रही हैं जाकर जगन्नाथ प्रभुका दर्शन करनेको। हम तो बड़े धर्मसंकटकी स्थितिमें पड़ गये हैं ......आप ही बताइये, क्या करें?'

''तुम्हें अवश्य चले जाना चाहिये। अग्निकी साक्षीमें जिसे अर्धाङ्गिनी बनाया, उसकी रुचिका आदर करना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है।'' महात्माने मधुर स्मितके साथ आदेश दिया।

जैसे-जैसे दिन निकलने लगे, रहे-सहे लोगोंके धैर्यका बाँध भी टूटने लगा।

''हम इतने व्यक्तियोंके यहाँ रहनेसे आपको बड़ा कष्ट होता होगा? सबके लिये भिक्षा माँगकर लानी पड़ती है, सबकी सुविधाका ध्यान रखना पड़ता है। अतः हम चले जाते हैं।''

महात्माजीको सुख पहुँचानेका पावन उद्देश्य सामने रखकर ही एक दिन कुछ लोग चले गये। धीरे-धीरे एक-एक करके सभी चले गये। केवल एक व्यक्ति बच गया। अब महात्माजी और वह बचा हुआ व्यक्ति—ये दो ही प्रभुका आसन हिलानेके निश्चयको लिये रह गये थे।

निशीथ-वेला—सर्वत्र कोटि-कोटि सूर्यका प्रकाश फैल गया। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा अपने हस्तकमलोंमें खाद्य-सामग्री लिये खड़े थे। महात्मा कृतार्थ हो गये थे, सुर-मुनि-दुर्लभ भय-ताप-नसावन मनोहारी मूर्तिके दर्शन करके। आत्म-विभोर हो रहे थे वे; पर योगमायाका प्रभाव—साथवाला व्यक्ति घोर निद्रामें पड़ा हुआ था। उसे यहाँ जीवनके

चरम—परम उद्देश्य भगवत्प्राप्तिके बारेमें कुछ भी ज्ञान न था।

भगवान्‌ने अपने साथ चलनेका आग्रह किया महात्मासे, पर वे राजी न हुए। वे तो बारंबार पास पड़े व्यक्तिका दर्शन देकर उसे अपनी भक्ति प्रदान करनेका अनुरोध करते रहे।

"यह अधिकारी नहीं है। अभी इसका चित्त विषय-भोगोंमें पगा हुआ है। पद-पदपर इसे मानापमान, सुख-दुःख, मैं और मेरेका बोध होता है। रति-सुखमें इसके प्राण उलझे हुए हैं।" गम्भीर अमृतसम वाणीमें प्रभु जगन्नाथने कहा।

"प्रभो! यह अनधिकारी कैसे है? इसका पहला अधिकार तो यही हो गया कि इसने अन्तिम क्षणतक मेरा साथ नहीं छोड़ा। इसका यह अटल विश्वास ही इसे सबसे बड़ा अधिकारी बना देता है।"

भक्तका आग्रह भक्त-भक्तिमान् भगवान् टाल नहीं सकते। इस तर्कको काट न सके चतुर शिरोमणि श्रीकृष्ण .... भाग्य खुल गये उस अनधिकारीके भी।

साक्षात् जगन्नाथ सामने खड़े थे। कृतकृत्य हो रहा था वह भी प्रभु-चरणोंमें लोट-लोटकर। भगवान्‌की लीला—एक ही क्षणमें भगवान्‌के साथ दोनों पुरी पहुँच गये। उनके साथी लोगोंमेंसे अधिकांश तो अबतक दर्शन भी न कर पाये थे।

वहाँ अपने मित्रसे सारी घटना सुनकर वे सब महात्माके चरणोंमें लोट-लोटकर प्रार्थना कर रहे थे—"हमें भी दर्शन कराओ। हमें भी दर्शन कराओ, महाराज! हम आपको समझ नहीं सके। आपके असली स्वरूपको पहचान न सके। कृपया आप क्षमा करके—हमारे घोर अपराधोंको विस्मृत करके हमें भी दीनबन्धुके चरणोंमें स्थान दिला दें।"

अश्रुपूरित नेत्रोंसे महात्माने सबकी तरफ देखा—"तुम लोग निर्विघ्न अपने वासस्थलपर लौट जाओगे। कोई कष्ट नहीं होगा तुम्हें इस वन यात्रामें। जगन्नाथ प्रभु अन्तमें तुम्हें कृतार्थ भी अवश्य कर देंगे। पर निष्ठा अर्जन करना सीखो।" कहते हुए वे श्रीविग्रहमें समा गये।

परिशिष्ट - ३

पूज्य बाबाकी अमृतवाणी

(जनवरी १९६५ में पूज्य बाबाने मौन लिया था। इसके पूर्व उनके द्वारा दिये गये उपदेशोंका सारांश)

आस्तिकमें सपनेमें भी तीन चीजें नहीं होती—

१. काम विकार कदापि न होगा

२. क्रोध न होगा

३. लोभकी वृत्ति नहीं होगी। (परिवर्द्धनकी इच्छाका नाम है लोभ)

× × × ×

जीवनमें आप अपनी आत्म-प्रवंचना मत करो। स्त्री-पुरुषके सौन्दर्यको देखकर मनमें मलिनताकी गंध भी न आये तो समझो कि हम ककहरा पढ़ने योग्य हुये हैं।

× × × ×

हिमालयकी तरह अचल श्रद्धा भगवान्‌में हो जाय कि भगवान् हैं तब चार बातें हो जायेंगी। भगवान्‌की सत्ता स्वीकार करते ही चार बातें जीवनमें आ जायगी।

१. भगवान्‌के सर्वत्र अस्तित्वका अनुभव—यहाँ है, वहाँ है।

२. भगवान्‌की सर्व-समर्थताके विषयमें भाव कि वे क्या नहीं कर सकते।

३. सर्वज्ञताकी वृत्ति—कहाँ कब क्या हो चुका है, हो रहा है, होगा—इसका उन्हें पूर्ण ज्ञान है।

४. अत्यन्त प्यारका अनुभव होने लगता है भगवान्‌के प्रति।

फिर सपनेमें भी भय नहीं होगा।

× × × ×

१. ऐसे मरे कि फिर आना न पड़े।

२. मरते समय भगवान् सामने खड़े रहें

मरनेके पूर्व मरनेकी पूरी तैयारी कर लीजिये। बन्दर, कुत्ते भी बच्चोंको प्यार करते हैं वैसे ही आप भी संसारके पीछे रचे हुए जो रहे हो। गन्दा हुआ एक क्षण भी नहीं आयेगा! थोड़ी-सी भी कोई आपकी आलोचना कर दे तो आप फूँ करके उसे खाने दौड़ोगे। किसीकी जबानसे आपको दुःख हो भी गया तो बदलेमें उसे दुःख देकर आपको क्या मिलेगा? क्रोधकी आग जल रही है कहीं तो आप शीतल बन जाओ। टट्टीके बदले टट्टी फेंकनेसे क्या होगा?

× × × ×

खाली कहते हो कि भगवान् हैं। सत्संग सुननेका क्या अर्थ है? सुननेपर दुबारा सुननेकी आवश्यकता न पड़े। भीतर तो अभी आस्तिकता नामकी वस्तु भी नहीं है। आपको तो पद-पदपर संशय होता है। आपका कच्चा-चिट्ठा यमराजके हाथ है। आप दुनियाको ठगिये क्या हर्ज है।

× × × ×

समय रहते अगर मनुष्यको पता लग जाय और ठीक-ठीक वह चलता जाय तो उसे दुबारा सुनने-पूछनेकी आवश्यकता नहीं होती। कहनेवालोंपर कितना विश्वास है आपको? पर यहाँ तो आप पूछते ही रहते हो। सत्यको क्यों छोड़ते हो? पैसे कमाते-कमाते विष्ठाके कीड़ेकी तरह मर जाओगे। इनकम टैक्सका आपको इतना डर क्यों है? जब आप जानते हो कि पैसा इतनी घृणित वस्तु है।

मरनेके बाद दुनियामें नाम भर रह जायेगा। अशोकका नाम केवल इतिहासके पृष्ठोंमें रह गया है। जो वस्तु सत्य थी, है और रहेगी, उसे तुम मानो चाहे न मानो, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। आगके पास जाओ तो पैर जल ही जायगा, भले ही तुम बिना समझे जाओ। धर्म नहीं बदलता नीति बदलती है। आगके प्रगट करनेकी शैली बदल सकती है, पर जलानेका धर्म नहीं बदल सकता। ऐसे ही भगवान्‌का सनातन नियम नहीं बदलेगा। तो महाराज आस्तिक बनिये। एक बार सुननेपर दुबारा सुननेकी जरूरत न पड़े।

× × × ×

सिनेमासे बढ़कर व्यभिचार कामके अड्डे क्या होंगे? इससे बड़ा अड्डा

आजतक तो हमने नहीं देखा। तुम्हारे सारे जीवनका नक्शा सिनेमापर टिका है। छोरो! छोरियो! सिनेमासे बढ़कर मलिन वस्तु क्या हो सकती है? बढ़िया-से-बढ़िया फिल्म हो चाहे, पर मलिन वृत्तिके परमाणु उसमें भरे पड़े हैं। तुम (सिनेमा देखनेवाले) क्या परमार्थकी बात करोगे। अभिनेत्रियाँ मलिनताकी मूर्ति हैं, कामके परमाणुओंका चारों ओर प्रवाह बह रही हैं। जीवनका इतना नग्न चित्र, प्रवंचनभरा चित्र तुम क्यों देखते हो? यदि तुम कुत्तेकी मौत मरना न चाहो तो फिर सिनेमा क्यों देखते हो? एक भी सिनेमा देखनेवालेके जीवनमें अध्यात्म नहीं आ सकता।

× × × ×

आप यदि चमड़ेके जूते पहनते हो तो जितने जोड़े जूते आपके पास हैं उतनी गायोंकी हत्या आपके जिम्मे है। देशमें जब इतनी आपत्ति आयी हुई है तब आप क्या आप एक जोड़ी नहीं रख सकते? जूता पहनकर चमचमानेवालोंके जीवनको धिक्कार है।

× × × ×

सिनेमा देखनेवालोंके लिये चाहे वे अपनेसे अपने हों, हमारे पास कोई स्थान नहीं है। सबकी अन्तिम पंद्रह साँसमें पूरी खबर ले ली जायगी। आपके सबकी नस-नसका मुझे पता है। मुझे धोखा देनेवाला न तो पैदा हुआ है न होगा। ३५ वर्ष हो रहे हैं हमने सपनेमें भी झूठ नहीं बोली है। मैंने एक-एकको बड़े प्यारसे रास्ता दिखलाया पर फिर भी जब सुखी न हुये तो ....'मन पछितैहैं अवसर बीते'। 'दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु।' जैसे-तैसे भगवान्‌से जुड़कर अपने जीवनका रास्ता ठीक कर लो। जैसे सांस खत्म हुआ आपकी सारी बातें भूल जायेंगी। कर्म, वचन, मनसे ऐसा करो कि भगवान् प्रसन्न हो जायें। सहस्रबाहु, बलि, रावण, सरीखोंको भी काल खा गया। १९३१ के आसपास जब मैं रतनगढ़में शौच जाता था तो रास्तेमें इतने मकान दीखते पर हमें कोई उनके बनवानेवाला नहीं दीखता। सब चले गये।

× × × ×

Recreation चाहिये। ये छोरियाँ बाहर श्रृंगार करके चलेंगी। अरी इस टट्टी-मूतकी थैलीमें क्या है। तुम गदहों, कुत्तोंको ही ठगो। जिनकी

आँखोंमें भगवान् है, वे तो तुम्हारी ओर ताकेंगे भी नहीं।

मुखड़ा क्या देखे दर्पणमें। अरे, गदहों, कुत्तोंकी तरह पेट पालते-पालते स्त्री बच्चोंके साथ मर जाओगे।

× × × ×

आजकल रूखा बाल रखनेकी अमेरिकन फैशन है। चाहे .... हो चाहे .... हो। हमारे सामने मत बैठो। नहीं तो ऐसे ही सुनना पड़ेगा। जितना रूखा केश रखोगे, अध्यात्मकी किरण आपको बहुत कम स्पर्श करेगी। यह मैं अपने मनकी बात नहीं कहता बल्कि वैज्ञानिक तत्त्व है। मैंने प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे देखा है इनकी मजाकतको। अरे यार सफाई रखो पर साथ ही सत्यकी ओर भी नजर रखो। पहले तो मनुष्य बनो फिर भगवान्‌की बात करो। कहीं भी जीवनमें सच्चाई नहीं, भाव नहीं। आप अपने आप विचार कर देखो। एक व्यापारमें आप कितनी बातोंका विचार करते हो। काली मिर्चमें पपीतेके बीज मिलाते हो, जीरेमें झाड़ू, कोयलेमें पत्थर मिलाते हो। क्या करोगे इतने पैसेका? मरनेसे पहले कितनी रोटी खाते हो? माताके स्तनोंमें दूधसे पहले आता है तब जन्मते हो। खाना तो खुदामियाँ देते हैं।

एक बार गोविन्द भवनमें व्याख्यान देते हुए मैंने कहा सत्य बोलो। एक लड़का सत्संगमें आया था। वह अपनी दूकानमें ग्राहकको सत्य-सत्य बताया कि जोड़ा defective है इतना बाद दे देंगे। तो उसके पिताने सत्य बोलनेसे उसे थप्पड़ मारा। लड़केने आकर मुझे बताया। उसका पिता भी सत्संगमें आता था। मैंने उसके बापको बुलाकर पूछा। उसने फिर लड़केसे पूछा कि तूने बाबासे कहा था क्या? उसने कहा—हाँ।

× × × ×

भैया विषयकी प्रवृत्ति छोड़ो, फैशन कम करो। हमारे दर्शनसे यदि किसीका कल्याण होता तो मैं पोद्दारजीकी छतपर चढ़कर पुकारताकी दर्शन कर लो।

× × × ×

सबसे बढ़िया वस्तु है दीनता। यह परम आवश्यक है उसके लिये जो परमार्थके साधन मार्गपर चलना चाहे। प्राय: मानवमात्रमें यह भावना है

कि सारे संसारमें डेढ़ गाड़ी बुद्धि है; एक गाड़ी तो मेरे पास और आधी गाड़ी बाकी संसारके मनुष्योंमें बटी है। दैन्यताका मतलब है अभिमानका अत्यन्ताभाव जबतक अपने अन्दर किसीसे भी अच्छे दीखनेकी भावना है तबतक तो अध्यात्म मार्गपर चलनेकी पढ़ाई शुरू नहीं हुई है। जब सच्चे हृदयसे यह भावना आ जायगी कि मैं तो किसी लायक नहीं (यह केवल कहनेके लिये नहीं) तब इस मार्गमें ककहरा लिखना सीखा है। फिर ख, ग, घ .... आदि सब अक्षर जल्दी-जल्दी आ जायेंगे। इसके बाद देरी नहीं लगेगी।

× × × ×

सबसे बढ़िया बात है अपना जो भीतर असली रूप है वही बाहर रहे। दूसरोंके सामने बनाया हुआ अच्छा रूप मत रखो। फिर दैन्यतापूर्वक प्रार्थना हो तो आधे क्षणमें वह समुद्र अपनेमें डुबा लेगा।

× × × ×

मेरे सामने तो बहुत कह देते हैं कि मेरेमें सब दोष ही है, कोई गुण नहीं है। पर कहीं सभामें इनके बारेमें ऐसी बात जरा भी कह दी जाय तो ऐसे लगेगा जैसे गरम तेलके छींटे लगे हों। तब अपने भीतर दोष कहाँ मानते ? केवल कहते-कहते हो। इससे काम नहीं चलता।

जब तक प्रत्येक प्राणीमें श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण नहीं दीखते तब तक गोपीप्रेमकी बात करना और उपदेश करना केवल गोपी प्रेमका मजाक उड़ाना है। जब तक बाहर खड़े भूखे भिखारीमें श्रीकृष्ण नहीं दीखते तबतक कमरेके भीतर केवल बी०के०मित्रा या भगवानदास चित्रकारके मनकी कल्पनाकी ही पूजा होती है, भगवान्‌की पूजा नहीं। उस पूजाके करनेमें मेरा बिल्कुल विरोध नहीं कोई गलत अर्थ न समझें बल्कि हार्दिक सम्मति है क्योंकि पट्टी भी साफ करते रहो वह भी अच्छा है। पट्टी साफ करते करते किसी दिन पढ़ने भी लगोगे।

× × × ×

गोपीके कानमें और आँखोंमें श्रीकृष्णके अलावा कोई चीज घुसती ही नहीं, अब आप अपनी बात सोच लें। अभी तो अपने संसारके जरासे स्वार्थमें मामूली ठेस लगनेकी आशंका भी हो जाय तो आप बड़े-से-बड़ा

परमार्थको भी बड़ा देनेके लिये तैयार हो जाओगे। अभी तो काम क्रोध लोभ जो साक्षात् नरकके दरवाजे हैं – उन्हें आपने नहीं छोड़ा तब और क्या छोड़ोगे। पर इससे आप केवल अपने आपको ही धोखा देते हैं और दूसरे किसीको नहीं।

× × × ×

जो अहंकार बिल्कुल गल जाना चाहिये उस अहंकारको तो आप दूसरोंके सामने ऊँचा दिखानेकी चेष्टा करते हैं। यह केवल आत्म प्रवंचना है।

कहीं भी कोई भी यदि कोई गलती करे तो उसके बदलेमें उसे प्यार देना चाहिये। उसको बदलेमें और कुछ भी देना मूर्खता है।

× × × ×

जो अधिक चतुर होते हैं वे सत्यके मार्गपर बहुत कठिनतासे चल पाते हैं। क्योंकि यह चतुराई उन्हें कदम-कदमपर बाधा लगाती है। वे लोग हर बातमें यह कैसे? यह क्यों? वह बात ऐसे थी तो यह बात ऐसे क्यों? यह बात तो हमारे समझमें नहीं आयी आदि आदि। भगवान्‌के मार्गपर तो सरलता रखनेवाले ही आसानीसे चल सकते हैं। जैसे किसीको यहाँसे गीताप्रेस जाना हो तो वह रास्ता पूछता पूछता जो जैसे उसको बताया जायगा वैसे ही चलता जायेगा। उसके मनमें सन्देह भी नहीं होगा कि बतानेवाला गलत तो नहीं बता रहा है या रास्ता बतानेवाला खुद रास्ता जानता है कि नहीं। यदि कोई रास्ता गलत बता देगा तो उसपर चलने लगेगा आगे फिर किसीसे पूछकर सुधार लेगा। पर भगवान्‌के रास्तेकी बात बतानेपर दसों प्रश्न खड़े हो जायेंगे। इसका मतलब कि आपको रास्ते चलनेकी उत्कण्ठा नहीं है। पर महाराज आप यह क्यों भूलते हैं कि भगवान्‌की ओर बढ़नेवालेकी सब ओरसे रक्षा भगवान् करते हैं। वे तो अन्धे नहीं हैं। जब वे देखेंगे कि यह मेरी ओर आना चाहता है और किसीके बतानेसे वह गलत रास्तेपर चलने लगा है तो वे अपने आप दूसरेको भेजकर ठीक रास्ता बता देंगे। पर कोई चलना चाहे तब तो। इसलिये सरलता अत्यन्त आवश्यक है। पढ़ने-लिखनेसे मेरा विरोध नहीं और चतुराई भी ठीक रास्तेसे लग जाय तो अच्छी वस्तु है। पर अधिकांश तो चतुराईके स्थानपर चतुराईका अभिमान ही रहता है। वह आगे बढ़नेमें बाधा देता रहेगा।

(पूज्य बाबाने दिसम्बर १९७८ में पुनः मौन लिया था। उसके कुछ दिन पूर्व उन्होंने जो बातें कही थीं उनका सारांश नीचे दिया जा रहा है)

मुझे जीवनमें आठ महासिद्ध संत तो मिले हैं पर मेरी परिभाषाके अनुसार आस्तिक (भगवान्‌के अस्तित्वपर विश्वासी) एक भी नहीं मिला जिसे मैं १०० मेंसे ३३ नम्बर दे सकूँ। आस्तिकको मेरी परिभाषा यह है कि इन चार बातोंपर अटूट विश्वास—एक तो भगवान् सब जगह हैं—सर्वत्र भरे हुए हैं। दूसरा वे सब कुछ कर सकते हैं—सर्वसमर्थ। तीसरा सर्वज्ञ अर्थात् भूत-भविष्य, वर्तमानको हस्तकमलवत् जानते हैं और चौथा सबके साथ वे हमारे परम सुहृद हैं—हम कुछ भी नालायकी करें वे कभी हमारे पर रोष नहीं कर सकते। सब कुछ करनेके बाद भी पुकारते ही वे तैयार रहते हैं।

× × × ×

पर दोष दर्शन एवं निन्दासे सर्वथा बचनेकी चेष्टा रखो। कोई कुछ भी करे, कहे अपने चुप रहे या प्रेमसे थोड़ा-सा कह दे।

× × × ×

बस एक बात तुम लोग जीवनमें अपना लो तो फिर सब कुछ अपने आप हो सकता है—वह काम है अपनी जानमें भगवान्‌की स्मृतिको हर समय बनाये रखना। स्वभाववश फिर भूल जाओगे पर वे फिर याद दिला देंगे पर याद आनेपर अपनी जानमें किसी भी आवश्यक कामके बहाने भी छोड़ो मत। भागवतका एक श्लोक है कि भगवान्‌की स्मृति रखनेसे सात बातें अपने आप हो जायेंगी। एक तो अमंगलका नाश—जो भी प्रारब्धवश मनके प्रतिकूल होनेवाला है वह अपने आप ठीक हो जायगा। दूसरा मन एकदम शान्त हो जायगा। तीसरा अन्तःकरण निर्मल हो जायगा। चौथा भक्तिकी धारा शनैः-शनैः चालू हो जायगी। पाँचवाँ ज्ञान हो जायगा—जो भी बातें मनमें जाननेकी उठती हैं उन सबका ज्ञान हो जायगा। छठा—विज्ञान यानी सगुण, साकारके विषयमें सम्पूर्ण ज्ञान। सातवाँ—संसारसे पूर्ण विराग। इन सातोंके अलावा कुछ भी शेष नहीं बचता। आप करके देखिये तो सही—अभी शुरू कीजिये तो शाम तक पता चल जायगा।

× × × ×

मनुष्य जितने भी हैं, चाहे वे कितने ही हों सबपर भगवान्‌की कृपा-पूर्ण कृपा समान रूपसे बरस रही है। वैसे तो सभी जीवोंपर चाहे वे पशु-पक्षी हों कृपा समान है पर मनुष्यको तो एक प्रकारसे अधिकार मिल गया है कि वह उसका अनुभव कर सके। इसलिये आप हर समय उस कृपाका अपनेपर अनुभव करते रहिये। फिर देखिये आपका जीवन कैसे निहाल हो जाता है। भगवान् हर बात सुनते हैं आप कहकर देखिये तो सही। मैं तो अपने जीवनकी कहता हूँ कि कोई बात ऐसी नहीं कि उन्होंने सुनी नहीं हो। जब जैसे जिस समय कहा उसे सुन लिया और पूरी कर दी। उदाहरणार्थ जब मैं बहुत छोटा था तब एक बार रबरकी जरूरत थी पर मैंने किसीको भी कहा नहीं। दूसरे दिन माँने कहा कि कोई चीज ले लो—मैंने कुछ कहा नहीं तो बोली रबर लोगे क्या? मैंने स्वीकृति दे दी। इस तरह छोटी या बड़ी कुछ भी बात हो उन्होंने पूरी कर दी। आप भी कहकर देखिये तो सही।

× × × ×

आप तो एक ही काम करिये—निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन। फिर देखिये कोई भी चीज बाकी नहीं रहेगी। जो आपके लिये करना होगा सब हो जायगा। जीवनका कोई भरोसा नहीं कब किसका चला जाय इसलिये एक ही काम करिये निरन्तर भगवान्‌की स्मृति बनी रहे इसका प्रयत्न। फिर सब अपने आप हो जायगा।

× × × ×

भगवान्‌पर भरोसा करनेसे वे सब कुछ करनेको तैयार हैं। आप करके देखिये। जब आपका भरोसा ही डाक्टरपर हो तब वे क्या करें, वे उसीसे ठीक करायेंगे। नहीं तो क्या भगवान्‌में इतनी शक्ति नहीं है कि वे स्वयं दूर कर सकें। चाहे कोई भी विपत्ति हो आप उनसे कह कर देखिये। मैंने तो ४२ वर्ष पहले एक बार ऋषिकेशमें कहा था। मेरे पैरोंमें भयंकर गठियाका दर्द हो गया था। बहुत पीड़ा थी, पर मैं सहन करता था। एक दिन रातको जब बहुत पीड़ा हो रही थी, पर मैंने कहा प्रभो आप दर्द तो चाहे दस गुना कर दीजिये पर सहनेकी शक्ति तो दीजिये। तब मानो भगवान् नन्दनन्दनकी आँखें छलछला आयीं और वे कह रहे हैं कि तुमने मुझे इतना

निष्ठुर समझ लिया है कि मैं तुम्हें पीड़ा इतनी दूँगा कि तुम उसे सहन न कर सको। उसके बाद मेरी आँखोंमें आँसू आ गये और दो घण्टे नींद भी आ गयी। उठनेपर क्या देखता हूँ कि पीड़ा एकदम कम हो गयी और शौच भी अपने-आप चला गया और गङ्गाजीमें भी स्नान करके भी चला आया। इसलिये मैं कहता हूँ कि आप कोई विपत्ति, कष्ट आवे तो उसे भगवान्‌से विश्वासपूर्वक कह कर देखिये। बस इतना ही कहूँगा और तो मैं अपने अनुभवकी बातें क्या कहूँ उसे कोई समझनेवाला भी नहीं है।

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी तूं मंद मति, इतर दिखावत काहि॥

× × × ×

परमार्थके मार्गपर चलनेवालेके जीवनमें सात बातें आ जाती हैं। भागवतमें समाप्तिके समय सूतजीने कहा—अविस्मृति कृष्ण पदारविन्दयोः ....भगवान्‌का निरन्तर स्मरण करनेवालेके सात बातें जीवनमें आकर ही रहेंगी। (१) सारे अमंगल नष्ट हो जायँगे—हम सभी लोग चाहते हैं कि हमारी न चाहनेवाली वस्तु परिस्थिति न आये अर्थात् प्रतिकूलता न मिले। इसका सीधा उपाय है निरन्तर भगवान्‌को याद कीजिये। (२) मन शान्त हो जायगा। (३) अन्तःकरण निर्मल हो जायगा। (४) भगवान्‌में भक्ति उत्पन्न हो जाती है। (५) मनुष्य जानना चाहता है सब कुछ—सूर्य, चन्द्र, तारे कैसे हुए आदि आदि। इन सबका अपने आप ज्ञान हो जायगा कि कैसे क्या होता है। (६) निर्गुण निराकार, सगुण साकार आदि सब तरहको ऊहापोहका रहस्य भी पूरा-पूरा समझमें आ जायगा—विज्ञान। (७) अपने आप मन संसारकी सारी परिस्थितियोंसे हट जायगा एवं परमानन्दके समुद्रमें डूब जायगा। ये सात चीजें भगवान्‌की निरन्तर स्मृति रखनेसे आ जाती हैं।

× × × ×

जो प्रिय लगता है उसकी याद बिना चेष्टा ही आयेगी। उसकी सब चीजें अच्छी लगेंगी। जीवनमें व्यावहारिक ढंगसे भगवान्‌की ओर जानेकी सोचे तो रास्ता जल्दी तय हो जायगा। मन भगवान्‌को जबतक पकड़ता नहीं तभी तक तरीका पूछनेको मन करता है। हम लोग जीवनमें सुनी हुई बातें

उतारते नहीं हैं नहीं तो जीवनमें प्रश्नोत्तरोंके अवकाश ही नहीं रहे। भगवान् सच्चाई देखते हैं।

सच्चे मनसे पुकारिये फिर भगवान् किसी भी उपायसे आ जायेंगे। सच्चे मनसे पुकारनेकी जरूरत है। भगवान् केवल सच्चा भाव देखते हैं। आप मनमें एक कण भी सद्भाव आनेसे वे जान जायँगे।

मेरी कृपा तो इतनी ही है कि आप अपनेपर कृपा करिये। आपको चलना पड़ेगा—केवल बातोंसे काम नहीं होगा।

भगवान् शिवके विषयमें दो शब्द—भगवान् शंकर सबसे अधिक दयाके रूप हैं। वे दयाके सागर हैं। उनकी प्रसन्नता इतनी जल्दी मिलती है कि मैं आपको क्या बताऊँ। उनको रिझानेमें बड़ी आसानी होती है। केवल जल और बिल्वपत्र चढ़ाकर आप उन्हें प्रसन्न कर सकते हैं। मेरे पर तो केवल प्रणाम करनेसे प्रसन्न हो गये।

× × × ×

आप लोगोंके प्रत्येकके जीवनमें ऐसी स्थिति जरूर आती होगी जिस समय कि आप लाचार हो जाते होंगे, अपनेको निराश अनुभव करते होंगे—पर अगर वास्तवमें आप आस्तिक हैं एवं भगवान्की सत्तापर विश्वास रखते हैं तो निराशा आपको छू नहीं सकेगी। भगवान् सबकी सहायता समान भावसे करनेको तैयार खड़े रहते हैं—बाट देखते रहते हैं। जगत्की ऐसी कोई परिस्थिति नहीं आयेगी कि आप भगवान्की ओर देखें और निराशा भी रह जावे। आप भगवान्को बुलावें और भगवान् नहीं आवें, ऐसा हो ही नहीं सकता। जब आप ही कहते हैं कि भगवान् करेंगे तो सही पर किसीके द्वारा करेंगे तब वे कैसे आवें। नहीं तो भगवान् लंगड़े-लूले थोड़े ही हैं कि उन्हें किसी माध्यमकी जरूरत पड़े। पर आपकी नजर ही जब किसी धनवान या डाक्टरकी तरफ जाती है तब भगवान् कैसे आवें। यदि भगवान्पर विश्वास नहीं हुआ तो चाहे आप करोड़ों रुपया इकट्ठा कर लीजिये जीवन व्यर्थ चला जायगा। यदि मरते समय भगवान्की स्मृति नहीं हुई तो फिर जीवन मरणका चक्कर चालू हो जायगा। इसलिये एक ही बात कहनी है कि आप भगवान्का पूरा विश्वास कर लीजिये फिर देखियेगा कि वे कैसे आपकी बात सुनते हैं।

भगवान्‌ने कहा कि जो मेरी आशा लिये बैठा है उसकी उपेक्षा मेरे द्वारा हो ही नहीं सकती।

आज भी भगवान् सहायता करनेको तैयार बैठे हैं। किसीकी नजर ही उनकी ओर उठती नहीं। अगर आप भगवान्‌से नहीं जुड़ सके तो आपका जीवन व्यर्थ ही गया। मन-ही-मन जीवनका ध्रुवतारा बना लीजिये भगवान्‌को। यदि ऐसा हो गया तो जीवन सफल हो ही जायगा।

मैं आप लोगोंको रोम-रोमका प्यार और रोम-रोमका सद्भाव देकर जा रहा हूँ।

× × × ×

अगर आप विचार करके देखियेगा तो ऐसा लगेगा कि बनावटी बनाकर ऐसा कह देना कि मेरे जैसा सुखी कौन है, मैं बहुत बड़ा मस्त आदमी हूँ यह बहुत आसान है। ऊपरसे दिखा देना कि मैं बिल्कुल प्रसन्न हूँ कोई मतलब नहीं रखता। अगर उसका मन भगवान्‌में नहीं लगा है तो उसे शान्ति नहीं मिल सकती। सुख नामकी वस्तु उसके जीवनमें आ ही नहीं सकती, दुःखका अन्त हो ही नहीं सकता। यह नितान्त सत्य है कि जिसके मनकी वृत्ति भगवान्‌की ओर बढ़ने लगती है उसका दुःख कम होने लगता है। आनन्द और शान्ति निरन्तर बढ़ती ही जाती है। मानिये चाहे मत मानिये पर ऋषियोंने अनुभव करके देखा है कि अगर आप सुख चाहते हों तो मनकी वृत्तिको जगत्‌से हटाकर भगवान्‌में लगाइये। अगर आपका मन भगवान्‌की ओर दौड़ने लगा है तो सच मानिये सुख द्वार आपके लिये खुलने लगा है। अगर मन भगवान्‌की ओर जाने लगा है तो शान्तिका मार्ग प्रशस्त होता जायगा। यह बात सर्वथा सर्वांशमें सत्य है कि शान्ति नामकी वस्तु उसीके भाग्यमें है जिसका मन भगवान्‌की ओर लगा है।

एक न एक चिन्ता हर समय मनुष्यको घेरे रहती है। यह बाकी है, ऐसे करना है आदि। आप सम्बन्ध भगवान्‌से जोड़नेका अभ्यास करके देखिये—१५ मिनट आधा घण्टा अभ्यास कीजिये फिर आप देखेंगे कि ऐसी शान्ति जीवनमें कभी नहीं मिली होगी। भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़कर आगे बढ़िये—अपनी जानमें भगवान्‌से संबंध जोड़कर काम करिये तो आपको

सुख-शान्ति मिलने लगेगी।

बड़ा ही सौभाग्य उदय होता जब मनुष्यका मन भगवान्‌की ओर जाने लगता है। फिर दुःख नामकी वस्तु उसके जीवनमें रहती ही नहीं। अगर आप विपत्तियोंके जालसे छूटना चाहते हैं तो सबकी एक ही दवा है कि अधिकसे अधिक आप भगवान्‌का चिन्तन करते रहिये फिर दुःख अपने आप हटता जायगा। आप करके देख सकते हैं कि ऐसी कोई विपत्ति नहीं है जो भगवान्‌के चिन्तनसे न हट सके।

मेरे जीवनमें चार बार ऐसी घटनायें घटी कि जीवन अब जा रहा है, अब जा रहा है पर मेरा मन उस समय एकदम शान्त, प्रसन्न बना रहा। १९३४ के भूकम्पमें कलकत्तेमें छतपर खड़ा था और यों यों नाच रहा था। भगवान्‌का प्रत्यक्ष चमत्कार देखनेमें आया। कुंज बिहारी मिश्रकी लड़की तीन दिन बाद मलबेसे जीवित निकली। जीवनके रोम-रोमकी सच्चाईसे अपना अनुभव बता रहा हूँ कि कोई न कोई उपाय भगवान् आपका कष्ट हटानेका कर देंगे।

भोगासक्ति हटानेके लिये भोगी आदमी पहले यह माने कि मैं भोगी हूँ। आसक्ति तभी छूट सकती है जब मन पहले छोड़नेके लिये तैयार हो। जहाँ भोगासक्ति छोड़नेके लिये मनमें तड़पन आयी कि भगवान्‌की कृपाका एक कण आ जायगा। अपने-आप नवीनसे नवीन उपाय सामने आ जायगा। जबतक छोड़नेकी आंतरिक इच्छा नहीं होगी तबतक भोगासक्ति नहीं छूटेगी।

भगवान्‌का चिन्तन निरन्तर होता रहे—भगवान्‌के चिन्तनमें मन जुड़ा रहे यही निरन्तर सेवारत है।

× × × ×

भारतवर्षमें ऐसी-ऐसी घटनाएँ घटी हैं अगर उसका चिन्तन किया जाय तो मन भाव एवं आदरसे परिपूर्ण हो जाता है। सन् १९११ के आसपास भाई परमानन्दके छोटे भाई बालमुकुन्द बचपनसे विरक्त रहते थे। फाँसी होनेपर उनकी पत्नी रिखीबाईने आत्मोत्सर्ग कर दिया।

मनुष्य जब भगवान्‌के प्रेमकी आगमें जलता है तब उसकी क्या दशा, कैसी दशा होती है इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। आप सब

लोग पधारे हैं आप सभीकी बड़ी कृपा है। यदि सत्य विश्वास करें तो मेरी दृष्टिमें आप सब भगवान् हैं।

बड़े भाग्यसे कदाचित यदि भगवान्की कृपाका एक कण जीवनमें झलक जाय और मन भगवान्की ओर बढ़ चले तो मन कैसा निर्मल हो जायगा इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

मेरी प्रार्थना इतनी ही है कि आप अपने पर कृपा कर लीजिये जिससे अपना मन भगवान्की ओर लग जाय। ६३-६४ वर्षोंसे मैं देख रहा हूँ कि हमारा जीवन कैसे व्यर्थ जा रहा है। सब भेड़ियाधसानकी तरह एक ही ओर जा रहे हैं। आप उस दिशामें जाइये जहाँ शान्तिका अखण्ड साम्राज्य है।

मैं चाहता था कि आप लोगोंमेंसे दो-चार व्यक्ति भी भगवान्की ओर कदम बढ़ा सकते। भगवान् आज भी वैसे ही हैं, उनकी कृपाका समुद्र आज भी लहरा रहा है, आज भी कृपा वैसी ही सुलभ है।

आज मैं आप सबसे विदा ले रहा हूँ। अब मेरा काम समाप्त हो चुका है। अनुमान लगता है कि कल परसोंमें मुझे पता लग जायगा कि भगवान्ने किस कार्यके लिये हमें निमन्त्रित किया है, क्यों इस शरीरका निर्माण किया है।

सबके चरणोंमें अनन्त वन्दन मैं कर रहा हूँ। मेरी चेष्टा रही है कि मैं जीवनमें किसीका मन नहीं दुखाऊँ। जान-बूझकर मैंने किसीका मन नहीं दुखाया पर कड़ा जरूर बोलता हूँ। पर बोलनेवाला कोई और होता है यह मैं कैसे बताऊँ। अगर किसीका जरा भी मन दुखा हो तो क्षमा माँगता हूँ।

मैं रोम-रोमकी सच्चाईसे कहता हूँ कि प्रभो आप सभी क्षमा कर दीजिये। आशीर्वाद तो आप सभीका इतना है कि मैं उसे कहाँ रखूँ? इस जीवनमें तो मैं अब क्षमा माँगने भी नहीं आ रहा हूँ। जा रहा हूँ ऐसे देशमें जहाँसे कोई लौटकर नहीं आता। मैं कहाँ जा रहा हूँ यह कैसे बताऊँ।

भगवत्प्रेमके भावमें कोई बह सके तो उसका जीवन कैसा होगा यह वही जानता है।